

जनवरी-मार्च २००८

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका



सागर-सीपी
डॉ. तिलकराव गोस्वामी

आमले-सामले
राजेंद्र वर्मा

१५
रुपये

जनवरी-मार्च २००८

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक

डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका

मंजुश्री

संपादन सहयोग

प्रबोध कुमार गोविल

जय प्रकाश त्रिपाठी

अश्विनी कुमार मिश्र

हम्माद अहमद खान

संपादन-संचालन पूर्णतः

अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●

आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.,

वार्षिक : ५० रु.,

(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के

रूप में भी स्वीकार्य है)

विदेश में (समुद्री डाक से)

वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड

कृपया सदस्यता शुल्क

चैक (कमीशन जोड़कर),

मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा

केवल "कथाबिंब" के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,

देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.

फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@yahoo.com

(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का

प्रयोग न करें.)

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक :

सुभाष गिरी

फोन : ९३२४०४७३४०

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.

कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु

१५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.

(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

॥ ७ ॥ हे राम ! / सुशांत सुप्रिय

॥ ११ ॥ सजायाफता / डॉ. मंगला रामचंद्रन

॥ १६ ॥ बस. चाय का दौर था और चर्चाएं थीं / राजेंद्र पांडे

॥ २० ॥ मध्यांतर / डॉ. वी. रामशेष

॥ २७ ॥ रोशनीवाला / राजेंद्र वर्मा

लघुकथाएं

॥ १६ ॥ उम्मीद / सुषमा सिन्हा

॥ २० ॥ हवाएं / कृष्ण शर्मा

॥ ४१ ॥ चौथा स्तंभ / साबिर हुसैन

कविताएं / गज़लें / गीत

॥ १० ॥ वे लोग / गिरीश चंद्र श्रीवास्तव

॥ ४० ॥ कविताएं / डॉ. तिलकराज गोस्वामी

॥ ४७ ॥ कोने वाला कमरा / राही शंकर

॥ ४९ ॥ गज़लें / विनय मिश्र, शकूर अनवर

॥ ४८ ॥ याद नहीं आता / देवेन्द्र रणवा

॥ ४८ ॥ गज़ल / प्रो. भागवत प्रल्हाद मिश्र 'नियाज़'

॥ ४८ ॥ गज़ल / केशव शरण

स्तंभ

॥ २ ॥ "कुछ कही, कुछ अनकही"

॥ ४ ॥ लेटर बॉक्स

॥ ३२ ॥ "आमने-सामने" / राजेंद्र वर्मा

॥ ३७ ॥ "सागर-सीपी" / डॉ. तिलकराज गोस्वामी

॥ ४२ ॥ "वातायन" / साबिर हुसैन

॥ ४३ ॥ पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद

(जापान के मियाजिमा द्वीप में एक धर्म स्थल का समुद्र स्थित द्वार)

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक के साथ “कथाबिंब” ने प्रकाशन के तीसवें वर्ष में प्रवेश किया है. प्रारंभ में, कुछ वर्षों तक “कथाबिंब” द्वैमासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती थी. इस तरह गर एक स्थूल अनुमान लगाया जाय तो अब तक पत्रिका के १०० से कुछ अधिक अंक प्रकाशित हो चुके हैं. कहना न होगा कि इस दौरान हजारों छोटे-बड़े रचनाकारों को “कथाबिंब” ने एक स्वस्थ मंच प्रदान किया है. प्रारंभ से ही पत्रिका ने हिंदी कहानी को प्रधानता देते हुए अपने आपको किसी वाद, खेमे या गुट से अलग रखा. यही कारण है कि आज देश की कुछ इनी-गिनी लोकप्रिय पत्रिकाओं में “कथाबिंब” की एक अलग पहचान बन गयी है.

इधर हाल के कुछ प्रवासों में कई साहित्यकारों से मिलने का संयोग हुआ. बहुतों से मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं था, फिर भी वे “कथाबिंब” को “पहचानते-जानते” थे. अभी कुछ दिन पूर्व इलाहाबाद विश्व विद्यालय के भौतिकी विभाग के आमंत्रण पर, दिसंबर ०७ में इलाहाबाद जाना हुआ. बहुत ही कम समय की सूचना पर आनन-फानन में कथाकार सुभाष चंद्र गांगुली ने एक काव्य संध्या का सफल आयोजन किया. इसमें उपस्थित सभी रचनाकार मुझे व्यक्तिगत तौर पर नहीं भी जानते थे, पर “कथाबिंब” से परिचित थे. इसी तरह फतेहगढ़-फर्रुखाबाद प्रवास के दौरान “शिखर संस्था” ने मेरे और पत्नी मंजुश्री के सम्मान में एक काव्य-गोष्ठी आयोजित की. दूसरे दिन, पास के क्रस्वे, छिबरामऊ में भी “समाजिक क्रांति परिषद” ने हमारा सम्मान किया गया. यह सब साबित करता है कि देश के साहित्य प्रेमियों के मध्य “कथाबिंब” की पैठ कितनी गहरी हो गयी है.

अब इस अंक की कहानियों पर कुछ पहली कहानी “हे राम !” (सुशांत प्रिय) भागीरथ प्रसाद की कहानी है जो अपनी कॉलोनी की गंदगी की सफ़ाई करना चाहता है लेकिन इसके चलते पागल करार कर दिया जाता है. मंगला रामचंद्रन की कहानी “सजायापता” उस बेटे की कहानी है जो एक ग़लत धारणा को मन में पाल कर अपने पिता को गंगा घाट पर छोड़ आता है लेकिन इस भयंकर ग़लती की सजा से बच नहीं पाता. अगली कहानी “बस चाय का दौर था....” में राजेंद्र पांडे ने रेखांकित किया है कि तथाकथित बुद्धिजीवी अधिकांशतः चाय के दौर के साथ तमाम मुद्दों पर मात्र चर्चा ही करते रहते हैं, बस इससे अधिक कुछ नहीं. डॉ. वी. रामशेष की कहानी “मध्यांतर” एक अजीब स्थिति की कहानी है. दोस्त की मृत्यु के कारण एक खुशनुमा शाम बिताने की आकाश की सारी “प्लानिंग” धरी की धरी रह जाती है, या फिर यह दुखद हादसा एक मध्यांतर ही था ! राजेंद्र वर्मा की कहानी “रोशनी वाला” उस व्यक्ति की कहानी है जो पढ़ाई में अच्छा होने के बावजूद गरीब होने के नाते अपनी जिंदगी में रोशनी नहीं भर सका. – यह गौर तलब है कि इस अंक में, श्रीमती मंगला रामचंद्रन को छोड़कर अन्य रचनाकारों की कहानियां “कथाबिंब” में पहली बार जा रही हैं.

देश एक संक्रमण-काल से गुजर रहा है. आजादी के बाद के शुरुआती दशकों की बहुत-सी समस्याओं से हम उभर चुके हैं. हरित क्रांति और श्वेत क्रांति के कारण हम खाद्यान्न और दुग्ध उत्पादन में आत्मनिर्भर हैं. सुरक्षा उत्पादन, स्टील-सीमेंट उत्पादन, मोटर-कार उत्पादन में हम बहुत से देशों से आगे हैं. ऐसे कुछ और भी क्षेत्र गिनाये जा सकते हैं. एक समय था जब अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिये ऋण का ब्याज चुकाने के लिए और ऋण लेना पड़ता था. यहां तक कि रिजर्व बैंक में रखा सोना भी हमें गिरवी रखना पड़ा. भला हो कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी का कि आज हमारे पास विदेशी मुद्रा की कमी नहीं है. हमारे कंप्यूटर इंजीनियर दुनिया भर में छाये हुए हैं. खाड़ी देश अब लोकप्रिय गंतव्य नहीं रह गये हैं. अमरीका में आप कहीं भी जायें, काफी बड़ी संख्या में सब तरफ हिंदुस्तानी बेखौफ घूमते नजर आते हैं. बहुत पहले, अमरीका में, “डॉट बस्टर्स” से भारतवासियों को खतरा बना रहता था कि कब कोई दंगई आकर हिंदुस्तानी औरत के माथे पर लगी बिंदी का लक्ष्य साध ले. हमारे देश में भी अब “ब्रेन ड्रेन” की कोई बात नहीं करता.

प्रश्न यह उठता है कि इतना कुछ होने के बाद क्यों नहीं बिजली, सड़क, मकान, भोजन, पानी, जनसंख्या-वृद्धि, बेरोज़गारी, अशिक्षा, भुखमरी, बाढ़, सूखा जैसी हमारी मूलभूत समस्याओं के कोई भी समाधान सामने नहीं दिखाई दे रहे हैं ? अभी कुछ दिन पूर्व हरियाणा सरकार की चपरासियों की तीन नौकरियों के विज्ञापन के जवाब में ११,००० आवेदन प्राप्त हुए. दरअसल, देखा जाये तो सत्ताधारी कर्णधारों में इन समस्याओं का समाधान ढूंढने की न तो योग्यता है और न ही वे इस दिशा में कुछ करना चाहते हैं. अगर जनता की सब परेशानियों का पार लग गया तो फिर इन कर्णधारों को कौन पूछेगा ? वोट बैंक की राजनीति का पहला नियम है कि केवल आश्वासन दो और कठिनाइयों को बरकरार रखो. हर चुनाव में एक नया नारा दो – “ग़रीबी हटाओ” के बाद “कॉन्ग्रेस का हाथ आम आदमी के साथ” और अब नये युवराज ने एक नया नारा दिया है – “कॉन्ग्रेस के दोनों हाथ ग़रीब आदमी के साथ.” रोड-शो करो या रथ-यात्रा करो. जनता की स्मृति तो वैसे ही कमज़ोर होती है. क्षेत्र विशेष में जिस जाति या धर्म वाले अधिक हों उसके अनुसार प्रत्याशी को खड़ा करो, चाहे वह जेल के अंदर हो या बाहर. उसके बाद बस पौ-बारह !

आपात्काल के बाद आयी जनता सरकार को “खिचड़ी सरकार” कह कर मखौल उड़ाने वाली ११० वर्ष पुरानी पार्टी की वर्तमान सरकार ऐसी “खिचड़ी” है जिसमें कंकड़ ज़्यादा हैं, दाल और चावल कम. बिना कोई दायित्व उठाये, सहयोगी वामपंथी दल रोज़ गीदड़ भभकी देते रहते हैं. वैसे भी उन्हें सरकार के चलने न चलने से कोई मतलब नहीं. बस अगले चुनाव में अपने मतदाताओं को यह बताना आसान होगा कि आपके हितों के लिए हम हमेशा लड़ते रहे. वामपंथी दलों का एजेंडा किसी से छुपा नहीं है.

तिब्बत में हो रहे दमन को लेकर वामपंथियों के साथ-साथ कॉन्ग्रेस भी चुप्पी साधे है. अरुणाचल को चीन ने अपना हिस्सा बताया तो भी हमारी कोई खास प्रतिक्रिया नहीं हुई. तिब्बत के धर्मगुरु माननीय दलाई लामा भारत में वर्षों से अतिथि के रूप में रह रहे हैं. उन्हें दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय सम्मान दिया जाता है लेकिन कार्यक्रम में सरकार का एक भी नुमाइंदा नहीं जाता. चीन में होने वाले ओलंपिक खेलों की मशाल के स्वागत और दौड़ के दौरान राष्ट्रपति भवन से लेकर इंडिया गेट तक का इलाका छावनी में तब्दील कर दिया जाता है ताकि कहीं से भी कोई भी तिब्बती प्रदर्शनकारी आस-पास भी न फटक सके. हमारी न कोई देशी-नीति है, न विदेशी नीति. दलाई लामा सालोंसाल भारत में रह सकते हैं किंतु अगले वर्ष के चुनावों के मद्देनजर अल्पसंख्यकों को न वामपंथी बंगाल सरकार नाखुश करना चाहती है और न ही कॉन्ग्रेस. लाखों बंगलादेशी भारत में रह सकते हैं किंतु तस्लीमा नसरीन के लिए हमारे यहां कोई जगह नहीं. लंदन पहुंच कर एक वक्तव्य में तस्लीमा ने कुछ ऐसा कहा – “मेरा वीजा छ: महीने के लिए ज़रूर बढ़ा दिया गया मगर मैं एक बंधक की तरह रह रही थी. भारत सरकार धार्मिक कट्टरपंथियों से भिन्न नहीं है. दिल्ली मेरे लिए टॉर्चर चेंबर जैसा था, मैं कुछ बोल नहीं पाती थी. मेरी गतिविधियों पर चौबिसों घंटों नजर रहती थी. मैं एक सोने के पिंजड़े में कैद थी. मैं बीमार पड़ी तो सरकारी डॉक्टर से इलाज कराया गया. मैं ठीक होने के स्थान पर और बीमार होती गयी. एक दिन तो बेहोश होकर गिर गयी. मैंने सोचा था कोलकाता में नहीं तो दिल्ली में रह लूंगी. मगर जब मेरे शरीर को खतम करने का प्रयास होने लगा तो मेरे पास भारत छोड़ने के अलावा दूसरा रास्ता नहीं था.” तस्लीमा ने भारत छोड़ दिया किंतु हमारे मानवाधिकारियों ने चूं भी नहीं की ! अफ़जल गुरु की फांसी भी अगले चुनाव निलंबित रहेगी.

पिछले कुछ महीनों से लगने लगा है कि देश में “सरकार” जैसे है ही नहीं ! थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें तो उसे प्रधानमंत्री तो अवश्य नहीं चला रहे हैं, वे मात्र किसी और का मुखौटा हैं. सारे निर्णय कोई और लेता है, सारे निर्देश कहीं और से आते हैं. अकबर द्वारा खींची लकीर के पास एक दूसरी लकीर खींच कर बीरबल ने लकीर को छोटा कर दिया था, इसके विपरीत, आज छोटी लकीर को बड़ी करने के लिए उसके आसपास कई छोटी लकीरें खींच कर बड़ा बनाने के प्रयास निरंतर जारी हैं. चाहे वह राष्ट्रपति के पद की गरिमा का प्रश्न हो अथवा प्रधानमंत्री के पद की बात हो इन पर विराजमान व्यक्ति “बाई डिफाल्ट” ही वहां पहुंचे हैं. मनमोहन सिंह जी मात्र एक “कार्यकारी” प्रधानमंत्री हैं, जैसे ही कोई उपयुक्त व्यक्ति पद ग्रहण करने को तैयार होगा उन्हें इस गद्दी को त्यागना पड़ेगा. कुछ दिन पूर्व, कई बार टलने के बाद, चार साल के बाद पहली बार, मंत्री परिषद का विस्तार संभव हो पाया लेकिन अभी भी कई पद रिक्त हैं. मीटिंगों और सभाओं में प्रतिदिन प्रधानमंत्री कुछ न कुछ कहते हैं किंतु उनकी आवाज़ वातानुकूलित सभागृह से बाहर तक नहीं जा पाती. भारत जैसे गरिमाशाली विशाल देश का सर्वोच्च नेतृत्व ऐसे व्यक्ति के हाथ में होना चाहिए जिसके एक आह्वान पर देशवासी अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तत्पर हों. छोटे कद के प्रधानमंत्री माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री कितने कद्दावर थे कि उनके एक बार कहने पर जनता ने एक बार का खाना छोड़ दिया था.

दरअसल, सरकार के पास मूलभूत समस्याओं से निपटने के कोई ठोस या कारगर उपाय नहीं हैं. महज़ “टोकनिज़्म” से कुछ हासिल नहीं हो सकता – कभी निर्यात पर रोक लगा दो और कभी महंगे और आदमियों के न खाने योग्य खाद्यान्न का आयात करो और बाद में उसे नष्ट कर दो. महंगाई बढ़ रही है तो उसका कारण जमाखोरी है या फिर सारी दुनिया के हालात ही खराब हैं ! और नहीं तो राज्य सरकारों के पाले में गेंद फेंक दो. “रियल्टी” कार्यक्रमों में किसी को जिताने के लिए वोट मांग कर अथवा अन्य किसी घटना पर अपने विचार एसएमएस द्वारा भेजने पर टीवी चैनल्स मोटी कमाई में जुटी हैं. क्रिकेट मैच में हारने के बाद “कमज़ोर कड़ी कौन ?” के लिए भी एसएमएस द्वारा मत आमंत्रित किये जाते हैं. आश्चर्य नहीं होगा कि शीघ्र ही कोई चैनल एसएमएस द्वारा जनता के मत मांगती दिखाई दे कि चौधरी चरण सिंह, राजा विश्व प्रताप सिंह, चंद्रशेखर, देवे गौड़ा, आई. के. गुजराल और डॉ. मनमोहन सिंह में से सबसे कमज़ोर प्रधानमंत्री कौन ?

देश का समृद्ध और मध्यम वर्ग आज आई पी एल के २०-२० मैचों में आकंट डूबा हुआ है. उसे बिजली, पानी, सड़क की समस्या से कुछ लेना-देना नहीं. टीम के मालिकों ने करोड़ों लगाये हैं, उनकी अरबों की कमाई होगी. काला सफ़ेद होगा. रोज़ कितना सट्टा लगता होगा इसका अंदाज लगाना मुश्किल है. उधर पालकी सजाई जा रही है, बूढ़े-जवान कहार तैयार हैं, युवराज आओ, विराजो. हमारा जीवन सफल करो.

लेटर बॉक्स

* 'कथाबिंब' का जुलाई-दिसं. ०७ अंक मिला. आवरण पृष्ठ पर शिकागो की कृत्रिम झील की प्राकृतिकता भा गयी. देर तक निहारता रहा. सोचता रहा कि शॉमबर्ग के अभियंता, जिसने इस झील को आकार दिया है, की कला-दृष्टि और देशभक्ति कितनी विकसित और उदात्त है! हमारे इंजीनियर ९५ प्र.श. हज़म कर जाते हैं और ५ प्र.श. का निर्माण कार्य कराते हैं.

कहानियों, लघुकथाओं, कविताओं, साक्षात्कार (सागर-सीपी), आत्मालोचन (आमने-सामने) व समीक्षाओं से सुसज्जित कथाबिंब की लगभग हर रचना पठनीय ही नहीं, मननीय भी है. प्रत्येक कहानी, प्रत्येक कविता का अनूठा स्वाद है. 'साहित्य संस्कारित करता है,' 'अंधेरे को रोशनी देता है' - को बखूबी चरितार्थ करती रचनाएं बहुत अच्छी लगीं. संपादकीय - हर देशवासी से देश वफादारी चाहता है, गद्दारी की नहीं, किंतु.....

सुरेंद्र रघुवंशी, डॉ. सरोज कुमार, कृतिका केशरी की कविताएं, जितेंद्र जौहर का गीत अंदर तक झकझोर गया. 'खूंखार समय' के सच को बेबाकी से उधेड़ती और सोचने-गुनने को विवश करती रचनाएं अंक को सार्थकता देती हैं और संग्रणीय बनाती हैं.

'कहानी की मूल शर्त होती है उसकी लोक रंजकता और आस्वादन जो पाठक को बांधता है और कथा-समाप्ति तक उसके कुतूहल को बनाये रखता है.' इस शर्त को अंक की सभी कहानियां पूरा करती हैं. 'समय-चेतना' सबमें अनूजित होती है. जहां 'बदमाश आदमी' और 'पांचवां बूढ़ा' - समाज और राजनीति के छद्म और विसंगतियों को उकेरती हैं, वहीं 'नौ-चौदह की लोकल' और 'राजा सारंगा...' मायाविनी मुंबई के रूपाकर्षण और उसकी चकाचौंध में तिरोहित होती आदमी की निजता को चित्रांकित करती हैं.

ज़िंदगी को खुशनुमा बनाने और फिर उसके लिए पैसे कमाने की पागल सनक आदमी को यंत्र बनाकर छोड़ देती है, एकदम संवेदन शून्य. टूट हो रही ज़िंदगी का सच उजागर करती है 'कोल्हू का बैल.'

हर कहानी का उम्दा शिल्प, 'अंदाजे-बयां और'.....आवरण, छपाई, कागज़ सब कुछ बेजोड़. सब पर मुंबई की माया की छाप!

❖ शिवमूर्ति सिंह,

डी-११, पी. डब्ल्यू. डी. काटर्स, इलाहाबाद - २११ ००६

* 'मुंबई की बातें' पत्रिका के सितंबर अंक में प्रकाशित आपका लेख 'मेरी जापान यात्रा' पढ़ा. लेख में जापानी लोगों की राष्ट्रभक्ति और भाषा भक्ति के बारे में आपने अच्छी जानकारी दी है. यह बात तो सर्वविदित है कि विभिन्न प्रकार की आपाद स्थितियों में रहते, परमाणु बम की मार खाये इस राष्ट्र ने कैसी भक्ति पायी है जो बुद्ध का सिर तो कत्ल कर सकते हैं लेकिन राष्ट्र का नहीं! स्वामी विवेकानंद जी तो बार-बार पुकारते रहे कि मेरे देशवासियों एक बार जापान हो आओ, देखो सीखो! सो हमारा दोष इतना है कि हम भगत सिंह नहीं बन पाये, नक्सलवादी बन गये. चंदन

तस्कर बन गये. नेता, आज स्वयं इसी चरित्रहीन राष्ट्रनीति के शिकार होकर एके-४७ की छाया में रहते हैं. जैसी करनी, वैसी भरनी, भर रहे हैं आगे और भरेंगे. सो डॉ. साहब आपका लेख सीमित सर्कुलेशन वाली एक पत्रिका में छपा है, कृपया इसे विस्तार दें. हकीकत जन-जन तक पहुंचे तभी सार्थक होगी. हो सके तो आप अपने अनुभवों को जो कुछ जापान में देखा, पुस्तक का रूप दें, चाहे छोटा रूप ही क्यों न हो.

'कथाबिंब' का संयुक्तांक भी मिला. पहली नज़र शिकागो के शॉमबर्ग इलाके की नगरपालिका की झील पर पड़ी. पहले सोचा, मैसूर के वृंदावन बाग का चित्र होगा. टकटकी लगाकर काफी देर तक निहारता रहा. इतनी शांति तो गंगा के तट पर भी नहीं मिलती क्योंकि लोगों की श्रद्धा के अपार जन-समूह में भला एकांत कहाँ मिले. अब तो बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री पर भी एकांत नहीं मिलता क्योंकि इन स्थानों पर भीड़ जमा रहती है. आवरण पृष्ठ की जितनी तारीफ़ करूँ, कम होगी.

आगे बढ़ा तो संपादकीय पढ़ा - ऐसा लगा कि किसी ज्वालामुखी के पास खड़ा हूँ. शिकागो से हिरोशिमा पहुंच गया. इतना यथार्थ, देश संबंधी इतनी स्पष्ट बातें! जी चाहता था कि थोड़ी देर आपकी कलम रोक आपके हाथों पर आंसू की दो बूंदें गिरा दूँ.

राष्ट्र ने १८५७-१९४७ के मध्य के संघर्षों पर इनाम में विभाजन पाया. लाखों लोगों की लाशों से गाड़ियां भर-भर गयीं. गरीबी, भुखमरी और मिली निराशा. मकान, रोटी, रोज़गार, शिक्षा न दे कर जो दिया वह महज मुद्दों को उठाने भर की बात नहीं है, पूरे राष्ट्र के समक्ष स्वार्थ के पहाड़ हैं. भाषा, राजनीति, धर्म, अर्थ, शिक्षा कोई मायने नहीं रखते. कोई अनुशासन नहीं, मर्यादा नहीं... पूरा देश पागलपन की एक बहकी धर्मशाला बन गया है जहां आतंक की नित नयी तलवारें खिंची नज़र आती हैं.

प्रिय कथाकार बलजीत जी पेन्शन पर समझौते की राय लिखते हों या राकेश जी शिक्षा नीति पर, क्षितिज जी मुंबई की सैर कराते हुए 'सफर' कर रहे हों या अखिलेश जी 'कोना भर धूप' - सभी कहानीकारों ने दर्द और पीड़ा की सुनामी भर दी है. लघुकथाएं भी अच्छी हैं. आमने-सामने में सुरेंद्र जी का दर्द भी पढ़ा.

जैन साहब की 'मन की मुक्ति' अगर न प्रकाशित होती और न पढ़ने को मिलती तो सिर फट जाता! थोड़ी राहत मिली, मुस्कराहट मिली. ब्लड प्रेशर कम हुआ.

आपकी कलम, आपकी पत्रकारिता चाहे वह राष्ट्रभाषा की गिलहरी हो, पर सेवा कर रही है. कोटि-कोटि नमन!

❖ किशोर गांधी,

आईई-४६, जयनारायण कॉलोनी, बीकानेर (राज.) ३३४ ००३

* 'कथाबिंब' का जुलाई-दिसंबर ०७ अंक मिला. इसमें आपने 'आमने-सामने' में मेरी आत्मरचना छापी है और कविताएं भी. मैं इसके लिए आपका हृदय से आभारी हूँ. इस रचना की तारीफ़ में फोन आने लगे हैं. अच्छा लगता है. यह अंक कागज़ एवं सामग्री की दृष्टि से उत्कृष्ट अंक

है. 'कथाबिंब' ने उत्तरोत्तर तरकी की है. मेरी बधाई. शिकागो की झील का आपका आवरण-फोटो बहुत सुंदर और आकर्षक है. आप श्रेष्ठ संपादक होने के साथ साथ ग़ज़ब के छायाचित्रकार भी हैं.

❖ सुरेंद्र रघुवंशी,

महात्मा बाड़े के पीछे, अशोक नगर (म.प्र.) ४७३-३३१

* 'कथाबिंब' का जुलाई-दिसंबर ०७ का अंक मिला. पढ़ कर मिली-जुली प्रतिक्रिया रही. संपादकीय में आपने हर बार की तरह इस बार भी कुछ तर्कसंगत प्रश्न उठाये हैं, जिन्हें पढ़कर आदमी सोचने पर मजबूर हो उठता है.

'नौ चौदह की लोकल' (डॉ.रमाकांत 'क्षितिज') कहानी सहज-सरल होने के साथ-साथ रोचक भी लगी. जिन पाठकों ने अभी तक मुंबई का दर्शन नहीं किया है, उन्हें भी वहां के आम आदमी की दिनचर्या से परिचित करवाने में यह कहानी सक्षम है. प्रायः 'कथाबिंब' में प्रकाशित लघुकथाएं कथानक के आधार पर कमजोर होती हैं, कृपया इस ओर ध्यान दें.

❖ कृष्ण शर्मा,

१५२/११९, पक्की ढक्की, जम्मू (जे.एंड.के.) १८०००१

* 'कथाबिंब' (जु-दिस.०७) की प्रति मिली. आभार! डॉ.सरोज कुमार को 'सागर/सीपी' में पढ़ना सुखकर लगा. उनकी कविता 'स्वाति दर्शन' का चिंतन उत्कृष्ट है. भाई महेश कटारे ने पुनः प्रभावित किया. हितेश व्यास का 'नया घर' नये दौर का चित्र है. इस बार कविताएं तो आपने दिल खोलकर खूब छापी हैं. उन्हें आपने 'फ़िलर' के रूप में स्थान नहीं दिया बल्कि 'पिलर' के रूप में स्वीकारा है. यह स्वागतयोग्य क्रम है. कहानी सिर्फ एक ही पढ़ पाया हूं अभी तक 'कोना भर धूप'. अखिलेश भाई ने पत्रकारिता के पीछे का चित्रण बखूबी किया है. लघुकथाएं दोनों अच्छी लगीं.

❖ जितेंद्र 'जौहर',

एन-३३/६, रेणुसागर, सोनभद्र (उ.प्र.) २३१२१८

* 'कथाबिंब' का संयुक्तांक मिला. इस बार का अंक विगत सभी अंकों से अधिक आकर्षक है. नयनाभिराम मुख पृष्ठ, चिकने काराज पर छपाई और कहानियां, कविताएं भी सभी स्तरीय हैं. सर्वश्री राकेश कुमार सिंह एवं रजनीश राय की कहानियों, तस्नीम एवं जैन की लघुकथाओं ने संवेदना एवं सोच के स्तर पर हृदय को झकझोर दिया.

स्तरीय संपादन आपके अब सेवानिवृत्ति के पश्चात रंग बिखेर रहा है. चूंकि इस बार आपने संपादकीय को भी डूबकर लिखा है और धांसू लिखा है. मुद्दों को खुलकर उठाया है. ज्वलंत समस्याओं पर स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं और सार्थक सुझाव दिये हैं. लिखते रहें. बधाई शतशतः.

पुरस्कार योजना में बंधु श्रेष्ठ कमलेश्वर का स्मरण भी आपकी आत्मीय पहचान है मुझे भी आत्म सुख मिला.

❖ मदन मोहन 'उपेंद्र'

ए-१०, शांतिनगर, मथुरा - २८१००१

* पत्रिका का जुलाई-दिसंबर ०७ अंक मिला. इस अंक में कई कहानियां अच्छी लगीं. 'कोल्हू का बैल' कहानी हर नौकरी पेशा की आप बीती है. वह ज़िंदगी ही क्या जिसमें इतनी पेचीदगियां न हों. फिर भी कुछ पल अपने हैं. जिसमें आदमी मनमाफ़िक रह सकता है. यही कहानी का सार है. इसी अंक में 'बदमाश आदमी' कहानी भी है जिसमें एक प्रभावी युवक अपना अनुचित काम पूरा कराना चाहता है. एक कर्तव्य निष्ठ शिक्षक उसके मंसूबे पूरे नहीं होने देता. भ्रष्ट व्यवस्था शिक्षक को किनारे कर देती है. 'नौ चौदह की लोकल' में एक रेलवे यात्रा का लेखक ने अच्छा खाका खींचा है. ट्रेन से यात्री चढ़ते-उतरते हैं फिर रेलवे के डिब्बे की चिकचिक. कभी रेलवे स्टेशन निर्जीव सा लगता है. 'पांचवां बूढ़ा' कहानी भी अच्छी लगी. किसी की व्यवस्थित ज़िंदगी कुछ लोग कैसे बिगाड़ते हैं यही इस कहानी का सार है. आगे भी हम ऐसी ही ज़िंदगी से रूबरू कराती कहानियां पढ़ना चाहेंगे.

❖ दिलीप कुमार गुप्ता,

११ छोटी बमनपुरी, बरेली (उ.प्र.)

* 'कथाबिंब' के दो पूर्ववर्ती अंकों के साथ इस अंक (जु.दि.०७) को आद्योपांत पढ़ा. मैं हिंदी साहित्य का छात्र नहीं हूं. मगर हिंदी के प्रति मेरी श्रद्धा एवं निष्ठा रही है. अपने वय के ४४वें पड़ाव में कई हिंदी मंचों से जुड़ा, बनाया तथा उन्हें उसी स्थिति में छोड़कर अपनी विज्ञान विषयक शिक्षा को पूर्ण करके विगत १६वर्षों से ग्रेसियम ट्रेड लि. बिरला ग्राम नागदा में आज वरिष्ठ कैमिस्ट के पद पर कार्यरत हूं.

विगत वर्ष आदरणीय सतीश दुबेजी के कहने पर मैंने 'कादंबिनी', 'नवनीत' आदि हिंदी पत्रिकाओं के साथ, 'कथाबिंब', 'शेष' एवं 'संबोधन' को मंगाकर पढ़ने का संकल्प लिया और आज भी जारी है. एक पाठक के नाते - इन पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, कविताओं, कहानियों आदि के लेखकों को अपना मंतव्य पूर्वाग्रह रहित होकर देता रहा. आज मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि इस यात्रा क्रम में मैंने लगभग डेढ़ वर्षों में एक हजार पत्र तद् विषयक लिखे हैं. प्रतिक्रिया में मुझे क्या मिला इसकी परवाह न करते हुए. मैंने अपना पाठक धर्म निभाया है. हां, एक बात मैं जरूर कहना चाहूंगा कि, मुझे पत्रोत्तर के रूप में मात्र दस प्रतिशत पत्र ही प्राप्त हुए हैं. मैं 'कथाबिंब' का भी आभारी हूं कि उसमें भी हमें लेख एवं लेखकों के पते उपलब्ध कराये हैं.

मैं 'कथाबिंब' के इस अंक (जु.दि.०७) के विषय में यही कहना चाहूंगा कि यह अंक अत्यंत व्यवस्थित एवं उद्देश्य में सही/सटीक लक्ष्य के प्रति अग्रसर है. पत्रिका की कहानियों की स्तरीयता से संपादक की इमानदारी झलक रही है. आपकी इस साहित्यिक यात्रा का सहभागी बनने के लिए मैं भी उद्यत हूं मगर मैं अभी एक पाठक ही रहना चाहता हूं. क्योंकि पाठक बनकर अभी जो मुझे आत्मानंद मिल रहा है शायद वह लेखक बनने पर न मिले. मैं कहानी की इस प्राचीन विधा के मर्म एवं रहस्य को 'कथाबिंब' के माध्यम से समझने का प्रयत्न कर रहा हूं.

इस अंक में मुझे जो कहानी सबसे समसामयिक लगी वह 'कुंवर प्रेमिल' की 'पांचवां बूढ़ा' लगी. क्योंकि इसमें जो बात कही गयी है वह राजनीतिज्ञों के अपरिपक्व सोच एवं हड़प जाने वाली आज की राजनीतिक

व्यवस्था का वर्णन है. 'कोना भर धूप' में सरकारी तंत्र में अराजकता एवं भ्रष्टाचार परिभाषित करने का प्रयास, अखिलेश कुमार का सार्थक जान पड़ा. 'कविता मेरी रगों.....' में सुरेंद्र रघुवंशी के स्मरणात्मक लेख में भाषा, भाव एवं शब्दों के प्रयोग अत्यंत प्रभावकारी लगे. साहित्य के उपमा एवं उपमेय का प्रयोग एवं प्रधानता देखकर/ पढ़कर साहित्य हृदयी व्यक्ति को आंतरिक सुख मिलता है और वह इसमें है. 'रचनात्मकता पार्ट टाइम...' में डॉ सरोज कुमार एवं विलास गुप्ते की साहित्यिक चर्चा साहित्य की दशा एवं दिशा को अनूठे रूप में परिभाषित की है. अंत में इस अंक में विविध रूपों को एक रूप कर प्रस्तुत करने के लिए संपादक को पाठकों की ओर से मेरी शुभकामनाएं.

❖ अरविंद कुमार पाठक,

ए १०, एबीसी लाइन, बिरला ग्राम, नागदा (म.प्र.)-४५६३३१
पिछले अंक में छपा एक अधूरा पत्र.....

* 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून ०७ का अंक मिला. 'कुछ कही, कुछ अनकही' सदा ही बेहतरीन होता है. देश के मौजूदा हालात पर अपनी भावनाएं व्यक्त करने के लिए यह पत्र लिख रहा हूं. बड़े दुख का विषय है कि राष्ट्रीय पर्व जैसे कुछ अवसरों पर राष्ट्रीय चरित्र का बखान, मानवता, नैतिकता आदि पर व्याख्यान, गांधी, नेहरू आदि महापुरुषों का गुणगान तथा 'मेरा भारत महान' जैसे नारों तक ही सीमित रह गया है. पिछले किसी अंक में डॉ. जनार्दन यादव के पत्र में बड़ी अच्छी बात लिखी है कि राजनीतिक पार्टियों में संकल्प शक्ति का अभाव है. राजनीति में अपराधी प्रवृत्ति के लोग घुस गये हैं. कानून की सरेआम धजियां उड़ाई जा रही हैं. राजनीति के नाम पर धार्मिक वैमनस्य फैलाने का काम 'संघों' और 'परिषदों' द्वारा अंजाम दिया जा रहा है. राजनीतिज्ञों के लिए शैक्षणिक योग्यता तय करनी चाहिए ताकि शिक्षित लोग राजनीति में आयें. आज कल हर ऐरे-गैरे, अनपढ़-गंवार पैसे और गुंडा गर्दी के बल पर मंत्री और सांसद बन जाते हैं. उनका चरित्र प्रमाणपत्र भी नहीं देखा जाता है. ऐसे अधिकतर लोग अपराधिक पृष्ठभूमि से आते हैं. बड़े शर्म की बात है कि जापान जैसे छोटे देश बड़ी प्रगति कर रहे हैं. और हमारे नेता और मंत्री राजनीतिक दांव पेंचों में उलझे हैं और जनता को मंदिर-मस्जिद की बातों में उलझा रखा है. कोई भी राजनीतिक चुनाव बिना खून खराबे के, बिना बूथ-कैपचरिंग के संपन्न नहीं होता है. कानून-व्यवस्था पंगु हो चुकी है. इसके लिए कुछ करने की बहुत आवश्यकता है. धार्मिक और राजनीतिक पार्टियों को याद दिलाया जाना चाहिए कि वे अपने दलगत स्वार्थों और वैमनस्य को छोड़ कर अपने अपने मंच से जनता को सांप्रदायिकता के खिलाफ एकजुट होने का आवाहन करें. धार्मिक और सामाजिक एकता के बारे में पोस्टरों का उपयोग करें. यदि किसी पार्टी का कोई मुखपत्र है तो उसमें एकता, प्रेम, सद्भावना पर आधारित लेख जनता तक पहुंचाये. प्रयासों के द्वारा कुछ भी संभव है. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की एक आवाज पर सारा देश अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट हो गया था. तो आज ऐसा क्यों नहीं हो सकता? जो राजनीतिक दल जनता की भावनाओं को भड़का सकते हैं वे जनता की भावनाओं का उचित मार्गदर्शन क्यों नहीं कर सकते? जब एक मुख्यमंत्री अपने राज्य में दंगा करवा सकता है तो अन्य मुख्यमंत्री अपने राज्यों में प्रेम, एकता और शांति का प्रचार-प्रसार क्यों नहीं कर सकते? इसके लिए दृढ़ संकल्प,

शक्ति वाले बुद्धिजीवी और गैर सरकारी संस्थाएं आगे आकर प्रयास कर सकती हैं. राजनीतिबाजों को उचित मार्ग दिखा सकती हैं. चिंता का विषय यह है कि हम भावी युवापीढ़ी के लिए किस तरह का वातावरण तैयार होने दे रहे हैं. क्या हमारे बच्चे आगे चल कर एक बेहतर माहौल में जी पायेंगे या उन्हें वर्तमान से बदतर हालात में जीना पड़ेगा. समस्या बड़ी विकट है, किंतु समाधान तो ढूंढना ही होगा.

❖ हम्माद अहमद खान,

सी-२, विंध्या, अणुशक्तिनगर, मुंबई-४०० ०९४

* 'कथाबिंब' का जुलाई- दिसं. ०७ अंक मिला. एक लंबे युग के बाद कहानियों को प्रधानता देने वाली कोई पत्रिका दिखाई दी. कहानियों का चयन बहुत ही अच्छा बन पड़ा है. मैं भी भविष्य में 'कथाबिंब' से अपने लेखन के माध्यम से जुड़ने को भरसक प्रयास करूंगा.

मैंने सारी कहानियां पढ़ीं. शिशिर कुमार शर्मा की कहानी 'राजा सारंगा...' ने मेरे दिल को छू लिया और यह अहसास भी करवा दिया कि जीवन की सच्चाई क्या है. सचमुच, कहानी पढ़कर दो बूंद आंसू भी रो दी. शिशिर को ऐसी कथा लिखने के लिए बधाई! और आपको बधाई इस बात की कि आपने इसे पत्रिका में छपा.

❖ सविता बजाज,

पोस्ट बॉक्स १९७४३, जयराज नगर,
बोरोवली (प.), मुंबई-४०० ०९१

* 'कथाबिंब' का जुलाई-दिसं. ०७ अंक देखा. 'सुंदर' कथा नाम के साथ काव्य परिवेश का समेटना सुखद है. हालांकि 'बिंब' में काव्य क्षेत्र समा जाता है. मुंबई जैसे महानगर के मरू से यह महका झोंका स्वागत्य है. सुंदर छपाई और गहन, गंभीर विचार-चिंतन वाले इस संयुक्तांक के लिए बधाई.

❖ गफूर 'स्नेही',

सी-७९ अर्पिता एन्क्लेव, नानाखेड़ा, उज्जैन (म.प्र.) ४५६०७०

नये प्रेस के साथ आपको तालमेल बिठाने में देर अवश्य हुई लेकिन जुलाई-दिसंबर के इस संयुक्तांक की साज-सज्जा दुरुस्त रही और कई उत्कृष्ट कहानियां पढ़ने को प्राप्त हुईं. इन कहानियों में सर्वाधिक प्रभावित किया कुंवर प्रेमिल की कहानी 'पांचवां बूढ़ा' ने. इस उत्तर-आधुनिक दौर में यह सनातन वर्चस्ववाद की रूपक-कथा है. इसी तरह बिना किसी केंद्रीय पात्र के डॉ. रमाकांत क्षितिज की कहानी 'नौ चौदह की लोकल' महानगर के जीवन-चरित्र का दिलचस्प आख्यान है. तीसरे पायदान पर शिशिर कुमार शर्मा की कहानी 'राजा सारंगा...माझा सारंगा' को पाता हूं. जिसमें एक बहुश्रुत प्रेमाख्यान का मार्मिक नवीनीकरण है. 'कोना भर धूप' अखिलेश कुमार तथा अन्य कहानियां भी पठनीय हैं. जितेंद्र जौहर के गीत में आम जीवन और संबंधों की साकथ्य और सारगर्भित अभिव्यक्ति है. अंक में और भी कई अच्छी काव्य रचनाएं हैं जिनके चयन हेतु साधुवाद!

❖ केशव शरण,

एस २/५६४, सिकरौल, वाराणसी २२१००२

हे राम !

१५ अगस्त, २००७ का दिन था. सरोजनी नगर की एक सरकारी कॉलोनी में एक ऊंधते हुए बुधवार की सुबह अलसायी पड़ी थी. बाहर लॉन में कुछ ऎंठे हुए पेड़ खड़े थे जिन पर बैठे कुछ कौए, शायद स्वाधीनता संग्राम की कोई कथा सुनसुना रहे थे. कॉलोनी के गेट के बाहर बने कूड़ाघर के पास तीन बंदर इधर-उधर घूम कर कुछ-कुछ खा रहे थे जबकि कुछ आवारा कुत्ते दूर से ही उन पर भौंक कर अपनी ऊर्जा नष्ट कर रहे थे. मकानों के बाहर जगह-जगह कूड़ा-कचरा फैला हुआ था. वातावरण में बदबू थी. सड़ांध थी. लगता था जैसे पास ही कहीं कुछ मर गया हो. जैसे इलाके के सफ़ाई कर्मचारी अनिश्चितकालीन हड़ताल पर हों. कॉलोनी के अधिकांश लोग सुबह नौ बजे तक सोये पड़े थे. जल्दी उठ गये कुछ लोग बदबू के बावजूद लॉन में खड़े हो कर धूप सेंकने के महत्वपूर्ण कार्य में व्यस्त थे.

अचानक लोगों ने देखा कि कोने वाले मकान का दरवाजा धड़ाक से खुला और गृह मंत्रालय में अनुवादक अट्टावन वर्षीय श्री भागीरथ प्रसाद एक बड़ा-सा टोकरा और झाड़ू लेकर घर से बाहर निकले. उन्होंने आव देखा न ताव, जगह-जगह पड़ा कूड़ा-कचरा टोकरे में डाल कर कॉलोनी के बाहर बने कूड़ा-घर में जा कर फेंकना शुरू कर दिया.

पर वहां मौजूद लोग उनकी इस हरकत से हैरान रह गये. खुसर-फुसर होने लगी. जितने मुंह, उतनी बातें. कुछ लोग उनकी इस हरकत पर हंसने लगे, कुछ फ़िकरेबाज़ी करने लगे.

- भागीरथ बाबू पागल हो गये हैं.

- इनकी इन्हीं हरकतों की वजह से इनके बीबी-बच्चे इन्हें छोड़ गये.

- इनकी ऐसी बेहूदा हरकत की वजह से कॉलोनी की इमेज कितनी खराब होगी.

- लगता है गांधी की भटकती आत्मा इन्हीं में घुस गयी है.

- अरे, कोई इन्हें समझाओ-बुझाओ. कोई इन्हें रोको.

धीरे-धीरे शोर सुन कर कॉलोनी के काफ़ी लोग लॉन में जमा हो गये. लोग उद्विग्न थे. यह एक गंभीर मसला था. एक हिला

हुआ आदमी कॉलोनीवासियों की छवि धूमिल करने के दुष्कार्य में लगा हुआ था. यह लोगों का पुनीत कर्तव्य था, उनका जन्म-सिद्ध अधिकार था कि वे उस व्यक्ति को ऐसा करने से रोके.

उधर भागीरथ बाबू इस सब से बेखबर किसी धुनी व्यक्ति की तरह चारों ओर का कूड़ा-कचरा साफ़ करने में जुटे हुए थे. उन्होंने अपनी क्रमीज़ और पैट उतार दी थी और केवल कच्चे-बनियान में ही अपने सफ़ाई-अभियान में जुट गये थे. वे इतने मन से, इतनी लगन से कॉलोनी की गंदगी साफ़ कर रहे थे जैसे कोई भक्त भगवान की पूजा-अर्चना करता है. चश्मा पहने हुए वे यह काम इतनी मेहनत से कर रहे थे कि उनका पूरा बदन पसीने से लथ-पथ था. इलाके का कूड़ा-कचरा और गंदगी साफ़ करते हुए वे अब किसी जुनूनी व्यक्ति से लग रहे थे.

॥ सुशांत सुप्रिय ॥

“चारों ओर गंदगी फैली हुई है. पूरा देश एक बहुत बड़ा कूड़ा-घर बन गया है. सब गंदगी फैला रहे हैं. इसी बदबू में सांस ले रहे हैं. पर सफ़ाई की किसी को फ़िक्र नहीं. एक बूढ़ा मसीहा जब देश से गंदगी साफ़ करने के काम में जुटा था तब किसी बदबूदार आदमी ने ३० जनवरी, १९४८ को उन्हें गोली मार दी थी. पिछले उनसठ सालों में देश में कितनी गंदगी फैल गयी है. क्या हम अपने बच्चों को ऐसा गंदा समाज विरासत में देंगे? अब इस गंदगी को साफ़ करना ज़रूरी हो गया है....,” भागीरथ बाबू जोर-जोर से बड़बड़ा रहे थे और कॉलोनी का कूड़ा-कचरा साफ़ करते जा रहे थे.

भीड़ में खड़े शुक्ला जी स्वास्थ्य विभाग में सचिव थे. वे अपनी स्टडी में बैठे “बिना पानी वाला झरना” नाम की किताब पढ़ रहे थे. लोगों का शोर सुनकर वे किताब बीच में ही छोड़कर बाहर आ गये थे. सारा माजरा देख कर उन्होंने लोगों को समझाया - “हमें जल्दी ही कुछ करना होगा. यह आदमी ‘मिसप्लेस्ट आइडियलिज़्म’ का मारा है. विक्षिप्त हो गया है. अपने-आप को महात्मा गांधी समझने लगा है. ही इज़ अ मेनि एक सफ़रिंग फ़्रॉम

डिल्यूज़न. पहले भी हम लोगों ने इसे भिखारियों और कूड़ा-कचरा बीनने वालों के साथ मेल-जोल बढ़ाते हुए देखा है. ऐसे व्यक्ति सोचते हैं कि वे दुनिया बदल देंगे, क्रांति ला देंगे. ऐक्चुअली, सच पीपल कैन बी डेंजरस टु देमसेल्वज़ एज़ वेल एज़ टु दि सोसायटी ऐट लार्ज. अगर हम-आप इसे रोकने जायेंगे तो हो सकता है यह वायलेंट हो जाय. क्यों न हम पुलिस बुला लें?”

बाक्री लोगों को उनकी बात सही लगी. लिहाजा सबने उनकी बात का समर्थन किया. यह पागल आदमी कॉलोनी में रहनेवाले सभी अधिकारियों की छवि धूमिल कर रहा था. इसके दिमाग में ‘आउटडेटेड आइडियलिज़्म’ का कीड़ा घुस गया था. यह सनकी सफ़ाई करके यहां गंद फैला रहा था. यहां का माहौल दूषित कर रहा था. इसे रोकना ज़रूरी था. कॉलोनी के छोटे बच्चों पर इसकी इस बेहूदा हरकत का क्या असर पड़ेगा? यह पागल, देश के फ़्यूचर को ख़राब कर देगा. बच्चों को तो ऐसे आदमी की छाया से भी दूर रखना होगा.

तत्काल सभी बच्चों को वहां से हटा कर टी.वी. पर कार्टून चैनल देखने की सुरक्षा में भेज दिया गया. बच्चे यदि यहां रहते तो भागीरथ बाबू की ऊटपटांग हरकतों की वजह से उनके बिगड़ जाने का खतरा था.

यह वह समय था जब पूरा युग गंदगी और बदबू में सना पड़ा था. लोगों के भीतर गंदगी थी, लोगों के बाहर गंदगी थी. गंदगी में लोटती हुई सरकारें आ रही थीं, जा रही थीं. मंत्रालयों में दागदार दामन वाले अधिकारी-गण तरक्की पा रहे थे. चारों ओर काले धन की जय-जयकार हो रही थी. कीड़े-मकोड़ों से लोग नोटों के सूटकेसों के पीछे भागे जा रहे थे. सारे शहर का मैला समेटे एक बदबूदार गंदा नाला लोगों के भीतर बह रहा था. लोग धड़ले से झूठ बोल रहे थे, जालसाज़ी और मक्कारी कर रहे थे, दोगलेपन और बदनीयती के पंक में डूबे थे. न निष्ठा बची थी, न मूल्य बचे थे. सब अवसरवाद का झुनझुना बजा रहे थे, अनैतिकता की दारू पी कर मस्त थे. बाज़ार का कीचड़ घरों में घुसता जा रहा था. यह गंदगी नहीं थी, जीने का एक पूरा बदबूदार, काला नज़रिया था. ऐसे समय में जब १५ अगस्त, २००७ की सुबह भागीरथ बाबू अपनी कॉलोनी की गंदगी साफ़ करने के अभियान में कूदे तो यह स्वाभाविक ही था कि लोग उन्हें पागल कहें. यदि आज गांधीजी जीवित होते तो यह युग उन्हें भी पागल की संज्ञा देता.

इधर कॉलोनी के लोग पुलिस का फ़ोन नंबर लगा रहे थे, उधर भागीरथ बाबू अब कॉलोनी के बाहर बने सार्वजनिक



सुरक्षित सुधिय
१९६८

बी.ए.(अंग्रेजी) ऑनर्स, एम.ए.(अंग्रेजी),
एम.ए.(भाषा विज्ञान), एम.फिल.(अंग्रेजी)

- प्रकाशन :** प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां व अनुवाद-कार्य प्रकाशित. कविताएं व कहानियां पुरस्कृत, कई भाषाओं में अनूदित तथा आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित. पुरस्कृत कहानी ‘बंटवारा’ पर मराठी फ़िल्म निर्माणाधीन.
- विशेष :** डी.ए.वी.कॉलेज, जालंधर, में कुछ वर्ष (अंग्रेजी) व्याख्याता (१९९४-९६).
- रुचि :** गायन, शतरंज व टेबल-टेनिस का शौक. स्केचिंग में भी रुचि.
- संप्रति :** सरकारी सेवा में उच्चाधिकारी.

शौचालय की गंदगी साफ़ करने में जुटे हुए थे. भीड़ में से कोई चिल्लाया - “अबे, गांधी की औलाद, सुधर जा.” पर भागीरथ बाबू पर इसका कोई असर नहीं हुआ. वे पहले की तरह ही तन-मन से अपने काम में जुटे थे. बीच-बीच में वे जगजीत सिंह द्वारा गायी साबिर दत्त की यह गज़ल गुनगुनाने लगते थे-

“सच्ची बात कही थी मैंने
लोगों ने सूली पे चढ़ाया,
मुझ को ज़हर का जाम पिलाया
फिर भी उनको चैन न आया,
सच्ची बात कही थी मैंने...”

भीड़ बढ़ती जा रही थी.

“बुड़्हा सठिया गया है,” भीड़ में खड़े लोग एक-दूसरे से कह रहे थे. तभी भीड़ में से न जाने किसने एक पत्थर उठाकर भागीरथ बाबू को दे मारा. पत्थर उनकी कनपटी पर जा लगा.

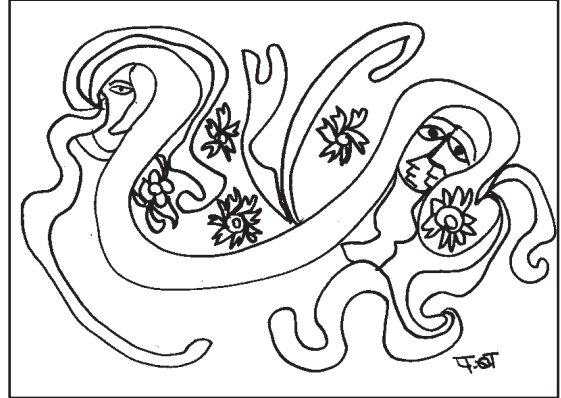
वहां से खून बहने लगा. न जाने उस पत्थर से सिर में लगी चोट का असर था या कोई और कारण था, लोगों ने देखा कि घायल भागीरथ बाबू सार्वजनिक शौचालय के बाहर पड़े बड़े से कूड़े के ढेर पर जा चढ़े. उसके बाद उन्होंने भीड़ को संबोधित करके आवेश में चिल्लाना शुरू कर दिया -

“समाज में गंदगी फैलाने वालो, भारत छोड़ो! चमचमाती, लंबी, चलती गाड़ियों में से बीच सड़क पर पेप्सी और कोका-कोला की प्लास्टिक की खाली बोतलें और मैकडॉनलड और पिज्जा हट के रैपॉर और गंदे नैपकिन फेंकने वालो, भारत छोड़ो! चुनावों में धांधली से जीत कर देश की सरकार चलाने की तैयारी करने वाले गुंडों, भारत छोड़ो ! लचकते नितंबों और उतावले उरोजों वाली अधनंगी देशी-विदेशी डांसरों के फूहड़ नाच-गानों पर नाचने वालो, भारत छोड़ो. काले अंग्रेजों, भारत छोड़ो !

“बुड़ड़ा पगला गया है. पुलिस को बुलाओ.” यह सब सुन कर भीड़ में खड़े लोग एक-दूसरे से कह रहे थे.

यह वह समय था जब महात्मा गांधी का चरखा कूड़ेदान में पड़ा था और उनका चश्मा किसी ब्लू-लाइन बस के पहियों के नीचे दबकर नष्ट हो चुका था. यह वह समय था जब गांधीजी की लाठी गुंडों के हाथों में आ गयी थी जो गांधीजी के आदर्शों को उनकी बकरी के साथ ही मारकर, पका कर खा गये थे. महात्मा गांधी की याद में हर नेता और सरकारी अफसर के कमरे में उनकी एक फोटो टांग दी गयी थी. उनकी याद में देश में हर साल एक दिन की छुट्टी दी जा रही थी, एक दिन का ‘ड्राई-डे’ घोषित किया जा रहा था. उनके नाम पर कुछ सड़कों, भवनों और विश्व-विद्यालयों के नाम रख दिये गये थे. उनकी याद में कुछ फ़िल्में बनायी जा रही थीं जिनमें दिखाई जाने वाली ‘गांधीगिरी’ उन्हीं फ़िल्मों तक सीमित थी. गांधीजी के लिए इतना सब करने के बाद देश के लोग उनके सपनों के भारत का क्रतल करके उसे गांधीजी की समाधि पर ही दफ़ना आये थे और अब पूरा देश हिंसा और फ़रेब के नंगे नाच में लिप्त था. गांधी और गांधीवाद इस युग के लिए अजनबी थे.

लोगों ने फ़ोन करके पुलिस बुला ली. पुलिसवालों ने आते ही घायल भागीरथ बाबू को गिरफ़्तार कर लिया. उन्हें ‘सार्वजनिक स्थल पर शांति भंग करने’ के अपराध के लिए गिरफ़्तार किया गया. लोगों ने रिपोर्ट दर्ज करायी कि भागीरथ बाबू का मानसिक संतुलन बिगड़ गया था. उनकी हरकतें सभ्य समाज के लिए खतरा थीं लिहाजा उन्हें इस तरह कॉलोनी में खुला घूमने की इजाज़त



नहीं दी जा सकती थी. कुछ लोगों ने पुलिस से यह भी शिकायत की कि भागीरथ बाबू ने कॉलोनी के उन कुछ युवकों पर पत्थर भी फेंके थे जो उन्हें समझाने-बुझाने के लिए उनके पास गये थे. हालांकि इस बात की पुष्टि नहीं हो सकी. कॉलोनी में रहनेवाले सभी लोग विभिन्न मंत्रालयों में अधिकारी थे. उनका कहना था कि उन्हें तथा उनके बीवी-बच्चों को भागीरथ बाबू जैसे पागल आदमी से जान-माल का खतरा था.

इस सबके बीच न जाने कैसे एक सात-आठ साल का बच्चा अपने घर से बाहर निकल आया था. जब पुलिस भागीरथ बाबू को गिरफ़्तार करके उन्हें गाड़ी में बैठा कर ले जाने लगी तो वह बच्चा आगे आ गया और कहने लगा - “पुलिस अंकल, आप भागीरथ अंकल को पकड़कर क्यों ले जा रहे हो? वो कोई चोर-बदमाश थोड़े ही हैं. भागीरथ अंकल तो हमारे लिए हमारी कॉलोनी की सफ़ाई कर रहे थे, वो कोई गंदगी थोड़े ही फैला रहे थे.”

इस पर उस बच्चे के पापा-मम्मी उसे पकड़ कर घर के अंदर ले गये.

इसके बाद जो हुआ वह आश्चर्यजनक था. प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि जब पुलिसवाले भागीरथ बाबू को गिरफ़्तार करके पुलिस की जीप में बैठा कर आगे बढ़े तो कूड़ा-घर के पास शांत भाव से घूम-फिर कर कुछ-कुछ खा रहे तीनों बंदरों ने अचानक कुपित होकर पुलिसवालों पर हमला कर दिया. बंदरों का यह रौद्र रूप देखकर पुलिसवाले भागीरथ बाबू को जीप में ही छोड़कर वहां से भाग खड़े हुए. और तब एक हैरान कर देनेवाली बात हुई. वे तीनों बंदर पुलिस जीप में हथकड़ियां पहने बैठे घायल भागीरथ बाबू के पास आये और प्यार से उनके हाथ चाटने लगे. प्रत्यक्षदर्शियों का यह भी कहना है कि उन्होंने उस दिन उन तीनों

बंदरों को रोते हुए देखा. वे भागीरथ बाबू के हाथ चाट रहे थे, उनके हाथों को सहला रहे थे जबकि उनकी आंखों से लगातार आंसू बह रहे थे. बाद में पुलिसवालों ने डंडों से मार-मार कर बड़ी मुश्किल से उन तीनों बंदरों को भागीरथ बाबू से अलग करके उन्हें वहां से भगाया. उन तीनों बंदरों के साथ हुई इस मुठभेड़ में कई पुलिसवाले घायल भी हो गये.

प्रत्यक्षदर्शियों का तो यहां तक कहना है कि उसी समय कॉलोनी के पेड़ों पर बैठे कुछ कौओं ने भी पुलिसवालों के सिर पर चोंचों और पंजों से हमला कर दिया. इलाके के लोग बताते हैं कि उस दिन भागीरथ बाबू के साथ-साथ इलाके के वे तीनों बंदर और कौए भी पागल हो गये थे.

ताजा समाचारों के अनुसार श्री भागीरथ प्रसाद शहर के पागलखाने में बंद हैं. उनसे मिलने गये कॉलोनी के इक्का-दुक्का लोगों का कहना है कि वे अब पूरी तरह से पागल हो गये हैं. पागलखाने में वे कई-कई दिनों तक मौन-व्रत धारण कर लेते हैं. बीच-बीच में जब कभी वे अपना मौन-व्रत तोड़ते हैं तो पागलखाने के अधिकारियों से कहते हैं कि वे राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी हैं. उन्हें पागलखाने से आजाद किया जाये ताकि वे समाज को गंदगी से आजादी दिला सकें. फिर वे अपने लिए चरखे की मांग करने लगते हैं. पागलखाने के कर्मचारी बताते हैं कि कभी-कभी वे देर तक खुद से बातें करते रहते हैं. कभी वे बेवजह हंसने लगते हैं, कभी रोने लगते हैं. कभी रहते-रहते आहें भरने लगते हैं और 'हे राम', 'हे राम' कहने लगते हैं. पागलखाने के कर्मचारियों का यह भी कहना है कि कभी-कभी बीच रात में उनके कमरे में से जगजीत सिंह द्वारा गायी गयी साबिर दत्त की इस गज़ल की दर्द भरी आवाज़ आती है जो देर तक पागलखाने के गलियारों में गूंजती रहती है--

“सब से बेहतर कभी न बनना,
जग के रहबर कभी न बनना,
पीर-पैगंबर कभी न बनना,
सच्ची बात कही थी मैंने,
लोगों ने सूली पे चढ़ाया,
मुझ को ज़हर का जाम पिलाया,
फिर भी उनको चैन न आया,
सच्ची बात कही थी मैंने ..”

द्वारा श्री एच.बी.सिन्हा, ५१७४, श्यामलाल
बिल्डिंग, बसंत रोड, नयी दिल्ली - ११००५५
फोन - ९८६८५११२८२

कविता

वे लोग

गिरीश चंद्र श्रीवास्तव

हम जीते नहीं हैं,
केवल सांस लेते हैं,
क्योंकि समय से पहले
उठकर जाने का
कोई उपाय नहीं है.
जीते तो वे लोग हैं
जो हाथ फैलाकर
आकाश नोच लेते हैं,
जंगल में सोयी हरियाली को
कच्ची नींद जगा देते हैं,
गुड़हल की देह से लहु निचोड़
सड़कों पर फैला देते हैं,
जलती हुई आंतों में
तेजाब उड़ेल देते हैं,
और न्याय की पीठ पर बैठ
चाबुक भांजते रहते हैं.
किंतु जीते वे लोग भी हैं
जो सेलाब को चीरते हुए
लहलुहाज लोगों के घाब
चुपचाप सहलाते रहते हैं,
और सूर्य की लातिमा को
मुट्टी में पकड़ कर
सघन अंधकार में
धरि से बिखेर देते हैं.
ऐसा नहीं है कि
सब कुछ अतीत हो गया है
क्योंकि, अब भी घोर निराशा में
लोग मुरकुरा लेते हैं
नरभक्षी के आने पर
सतर्क खड़े हो जाते हैं
और लाबारिस लाशों को
सहारा देने के लिए
चार कंधे आगे बढ़ आते हैं.

एफ- ३०१, अंसल प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट्स,
२८, सरोजिनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद- २११००१.

सजायाफता

ओफ़ मेरा पीछा करती वे आंखें. उन नज़रों के दायरे में रहूं या ना रहूं लगता कि वे सामने से, पीछे से, बल्कि जिधर नज़रें घुमाऊं उधर से टकटकी लगाये मुझे ही घूर रही हों. कभी-कभी तो संशय हो जाता कि वे आंखें मेरी पीठ या छाती से चिपकी हुई तो नहीं हैं. दिन रात सोते जागते उन आंखों का घूरना और पीछा करते रहना पिछले कुछ महीनों में मुझे असहज बना गया है. यह भी हो सकता है कि मैं जिस अपराध से स्वयं को मुक्त करने की चेष्टा कर रहा था वह उल्टा मुझे दुगुने वेग से ग्रस्त कर रहा हो. उस क्षण को भी कोस रहा हूं जब रोहित के साथ वृद्धाश्रम जाने को हां कहा था.

उस दिन रोहित दफ़्तर से निकलते हुए बोला - 'मेरे पापा की आज पुण्य तिथि है मैं हर साल इस दिन आश्रम जाता हूं. वहां के बुजुर्गों से मिलता-जुलता उनसे बातचीत करता हूं. उनकी आवश्यकताएं जान लेता हूं और आगे किसी दिन उसकी पूर्ति कर देता हूं. वैसे तो वर्ष भर में कई बार जाता हूं पर आज तो विशेषकर जाना होता ही है. तू भी चलता हो तो चल.'

रोहित की अपने पिता के प्रति आसक्ति देख कर मुझे अपने आप पर ग्लानि हुई. मुझे कई वर्ष पूर्व अपने किये का पश्चाताप वैसे ही अपनी आग में जला रहा था. जानता था कि मेरा अपराध किसी तरह के पश्चाताप से कम नहीं होने वाला था. ना ही मेरी भूल को सुधारने का कोई उपाय था ना अपनी भूल या अपराध को किसी के सामने ऋबूल करने का मुझमें साहस था. अपनी पत्नी तक को तो नहीं बता सकता. मेरे उस व्यवहार का पता चलने पर वह मेरे साथ न जाने कैसा व्यवहार करे. मेरे खिलौने उस बात का अस्त्र के रूप में भी इस्तेमाल कर सकती है. मेरे प्रति घृणा तिरस्कार से भर सकती है. हमारे बच्चे ऐसे माहौल में कैसे पलेंगे या बड़े होंगे इसकी कल्पना कर के ही सिहर जाता हूं. इसका प्रत्याशित आभास भी मुझे झकझोर देता है. ऐसे में जब रोहित ने वृद्धाश्रम साथ चलने को कहा तो न जाने क्यों ऐसा लगा कि शायद अपने अपराध बोध को कम करने की राह मिल जायेगी.

आश्रम में रोहित तो इतनी आसानी से उन असहाय, घर से दूर, अपनों द्वारा तज दिये गये वृद्धों से घुल-मिल गया कि मैं चकित

होने के अलावा कुछ और कर ही नहीं सका. मैं तो कभी ऐसा नहीं कर सकता. फिर मन को तसल्ली देने के लिए सोच लिया कि मैं तो पहली बार यहां आया हूं जब कि रोहित तो अक्सर आता रहता है. हालांकि दिल की तह से मुझे एहसास था कि मैं कितनी बार क्यों न आऊं पर रोहित की तरह घुलमिल नहीं सकता. वह अपने पापा को बहुत प्यार करता था और पापा के असमय गुजर जाने से सारे बुजुर्गों में पापा की छवि दृढ़ता है. पितृऋण से मुक्त होने का एहसास शायद उसे यहां आकर होता हो. अस्पष्ट रूप से मैं भी तो कुछ ऐसी मानसिकता लेकर ही तो यहां चला आया. फिर मेरा मामला तो संगीन था. मैं तो पितृऋण के अपराध बोध से ग्रस्त था. मैंने जिन हालात में उन्हें तजा, कपटी की तरह छला, उनके जीते जी उन्हें स्वर्गीय की उपाधि से विभूषित कर डाला, ये सारे कृत्य न जाने अपराध की किस श्रेणी में आयेंगे? मेरा यह कलंक कभी किसी हाल में नहीं मिट सकता और रोहित की तरह अच्छे बेटों

११ मंगला शमचंद्रन ११

को भी लोग शंका की नज़रों से देखने लगे तो आश्चर्य नहीं होगा.

आश्रम में कुछ लोग कैरम खेल रहे थे उन्हीं में से एक वृद्ध बोले, 'क्यों बेटा तुम भी आ गये तर्पण करने!' उनके चेहरे पर एक सदाबहार सी हंसी थी पर मेरे चोर मन को तो यह लगा मानो वे मेरी असलियत से वाकिफ़ हैं.

मुझे सकपकाया सा खड़ा देखकर और मेरे चेहरे की बदलती रंगत देखकर रोहित बेबाकी से बोल पड़ा - 'इनकी बात से परेशान मत हो. जोशी दादा की तो आदत है सबसे मज़ाक करने और उन्हें हतप्रभ करने की.'

वही वृद्ध फिर बोले, 'मैं मज़ाक तो करता ही नहीं. जो कुछ भी कहता हूं बस सही-सही दो टूक कहता हूं. अब आजकल के लड़के यही तो कर रहे हैं. अपने मां बाप को साथ रख नहीं पाते यहां धकेल देते हैं. घर पर रख लेते भी हैं तो इस तरह मानो बड़ा भारी एहसान कर रहे हों. जब मां बाप मर खप जाते हैं तो इनका ज़मीर जागता है तब उनकी तिथि पर यहां आकर एक दिन के

खाने के पैसे या कुछ फल आदि देकर मुक्त हो जाते हैं. कितना बढ़िया तरीका है नाम का नाम, यश और दरियादिली का ठप्पा. इतने सस्ते में इतना कुछ मिल जाता है. अगर यह कम है तो मन का कलुष भी धुल जाता है.’

रोहित तब तक उन लोगों के साथ कैरम खेलने बैठ चुका था. वहीं से बोला सतीश तू भी आ जा. जोशी दादा की बातें सुनकर घबराने या बुरा मानने का कोई अर्थ नहीं है. वो हर आने वाले को यूँ ही चमकाते रहते हैं.’

रोहित का मन धुली पुछी स्लेट की तरह साफ़ है जिस पर नयी-नयी इबारतें आसानी से लिखी जा सकती हैं. पर मेरे इस कलुषित मन का क्या करूं जो अच्छी तरह जानता है कि जोशी दादा ने जो बोला वो आकाशीय वाणी की तरह सत्य है और सत्य के सिवाय कुछ भी नहीं है. उनके बाक़ी साथियों में से भी कुछ की नज़रें ऐसी भेदती हुईं मानो एक्स रे की तरह मुझे अंदर तक जांच लेंगे. हो सकता है वे लोग यह देख रहे हों कि सामने खड़ा बंदा स्वार्थी है, अपने पाप की गठरी का बोझ कम करने आया है या वास्तव में परोपकारी. अभी तक अपने कुकर्म पर मैं अपनी ही नज़रों में गिरा हुआ था पर अब अपने पिता के समवय इतने सारे लोगों की पैनी नज़रों को सहना मेरे बस का नहीं था. मन ही मन प्रण कर लिया, ‘कान पकड़ता हूं अब दुबारा यहां नहीं आऊंगा.’

मेरा प्रण कितना टिक पायेगा या टिक भी पायेगा यह सब उस समय सोचा ही नहीं. जब रोहित और मैं हॉल से बाहर निकले तब मेरा ध्यान गया कि बगीचे में लगी बेंचों पर भी लोग बैठे हुए हैं. अब रोहित उन लोगों से मिलने लगा. यही नहीं महिलाओं वाले विभाग से कुछ वृद्धाएं रोहित को देख कर मुस्कार्यीं और कुछ बोलीं. रोहित तो मानो सबका ही लाडला था. रोहित के वहां रुक जाने से मैं भी यूँ ही खड़ा यहां-वहां सरसरी नज़र डाल रहा था. एक भला मानस अपनी उम्र को धता बताते हुए अपनी पैनी निगाहें मुझी पर गाड़े हुए था. मैं कुछ असहज हो गया और कनखियों से उसे देखने लगा. उसका चेहरा-मोहरा उसकी नज़रें कुछ पहचानी हुईं सी लग रही थीं. आसपास का वातावरण भूल कर अनायास ही मैं कहीं पीछे चला गया.

पिताजी की सीधी सपाट आवाज़ कानों में पड़ने लगी - ‘सतीश इतना तो कर ही सकते हो ना कि रोज सुबह जल्दी उठ कर दो चार सूर्य नमस्कार कर लो और सूर्य देवता को जल का अर्घ्य समर्पित कर दो. तुम्हारी ये दोनों आंखें बुढ़ापे में भी तुम्हारा साथ देंगी.’



अंजना शर्मा

३ जून १९४४, अहमदाबाद;

स्नातक (गणित)

प्रकाशन : हिंदी में लिखनेवाली तामिल भाषी परिवार की सदस्या, लेखन कर्म करते हुए तीन दशक से भी अधिक समय. लगभग ढाई सौ कहानियां, दो सौ लेख तथा हास्य व्यंग्य व कुछ लघु कथाएं देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. अब तक सात कहानी तथा एक व्यंजन की पुस्तक प्रकाशित. एक कहानी संग्रह ‘जमीन अपनी अपनी’ का संयुक्त रूप से संपादन. कथा संग्रह : आधुनिक अहिल्या, प्रश्नों का बरगद, तीसरा पड़ाव, तुमको कुछ नहीं आता, काऊन्ट डाउन, कदंबम, रिश्ते को क्या नाम दे.

अनुवाद : कुछ कहानियों का उर्दू, तमिल, अंग्रेज़ी तथा मराठी में भाषांतर; देवी अहिल्या विश्वविद्यालय की छात्रा द्वारा लघु शोध प्रबंध; दिल्ली के प्रकाशन द्वारा कल्पना चावला की स्मृति में ‘नारी चेतना के स्वर’ में देश भर की तीन सौ महिला रचनाकारों की कविताओं में रचना शामिल.

सम्मान : प्रथम कहानी संग्रह ‘आधुनिक अहिल्या’ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा (१९९२); आकाशवाणी भोपाल का प्रथम ‘लक्ष्मी बाला सम्मान’ (१९९२); इंदौर लेखिका संघ द्वारा ‘अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस’ पर सम्मान (१९९८); हिंदी दिवस पर रोटरी क्लब द्वारा सम्मान (२०००); उज्जैन में भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा ‘महिला सृजन के विविध आयाम’ के अंतर्गत प्रेषित लेख के लिए ‘राष्ट्रीय आंबेडकर साहित्य सम्मान’ से विभूषित (२००१); कहानी संग्रह ‘जमीन अपनी अपनी’ के संपादन के लिए संयुक्त रूप से गाज़ियाबाद से ‘निर्मला देवी स्मृति पुरस्कार’ (२००२), ‘कथाबिंब’ साहित्य पत्रिका में कहानी पुरस्कृत.

पिताजी की नज़रें तेज़ और आंखें निर्दोष थीं। उस दिन भी तो हरिद्वार में जब मैंने कहा - 'आप यहीं रहिए मैं ठहरने और वापिस जाने का इंतज़ाम करके अभी आता हूँ. थोड़ा तलाश नहीं करूंगा तो हमारे पास के पैसे सारे खर्च हो जायेंगे.'

बेचारे पिताजी ना जाने कब तक बैठे रहे होंगे. उस समय उनकी नाक पर रोग का हमला हो चुका था. रोग का इलाज लंबा और महंगा था जो उनके बस की बात नहीं थी. मैं तभी बारहवीं में पहुंचा था और उच्च शिक्षा का सपना संजोये पंख विहीन खग की तरह विचर रहा था. मैं मां पिताजी से नाराज़ भी था. मां से इसलिए कि वह मुझे यूँ बीच में ही अकेला कर गयी, ज़िम्मेदारी का एक अनचाहा बोझ मेरे नाज़ुक और अनगढ़ कंधे पर डाल गयी. पिताजी से इसलिए कि भैया की उच्च शिक्षा में जो ज़मीन थी वह भी बेच दी और भैया ने तो शिक्षा पाकर अपनी अलग राह पकड़ ली. यही नहीं हम लोगों से एक तरह से नाता ही तोड़ बैठे. उनका स्टेटस इतना ऊंचा हो गया कि मामूली नौकरी वाले पिताजी का परिचय अपने साथियों से कैसे करवाते.

मां की मृत्यु पर आये, क्रिया कर्म यूँ किया मानो हवा पर सवार हों और हम सब पर कोई मेहरबानी कर रहे हों. अगले दिन चले गये कि तेरहवीं पर फिर आ जायेंगे. वहां उनके कई ज़रूरी काम अटके पड़े हैं.

मैंने कुछ आशा के साथ कहा - 'भैया, भाभी और बच्चों को भी लाइए.'

'भैया ने न जाने किस एहसास में मेरे कंधे पर हाथ रख दिया था और रस्मी तौर पर पूछा - सतीश पैसों की ज़रूरत हो तो ज़रूर बताना.'

मेरे मुंह से कैसे निकलता कि - 'भैया मां के इलाज में ही बचा खुचा पैसा खर्च हो चुका है और वैसे भी घर की हालत आपके सामने है.'

मुंह से बोल ही नहीं फूटे. इस तरह बन गये हालातों से कैसे पार पाऊं यह मैं ज़रा भी सोच नहीं पा रहा था. आगे पिताजी और मेरी गुज़र बसर का क्या प्रबंध हो पायेगा यह सोचना या समझना मेरे बस से मानो बाहर की बात थी. मन में ढेरों निराशाजनक सवाल कभी अलग-अलग तो कभी इकट्ठा धावा बोलते. ये ऐसे सवाल थे कि इनका जवाब मेरे पास हो ही नहीं सकता था. कहीं मुझे भी पिताजी की तरह मामूली सी नौकरी पर तसल्ली तो नहीं करनी पड़ेगी. कहीं मेरी शिक्षा की यहीं पर इतिश्री तो नहीं हो जायेगी. इन बातों से इतना घबरा गया कि अनजाने, अनचाहे ही

स्वार्थी हो गया और बैचेनी मेरे खून में मिल गयी. जब पिताजी बोले, 'तेरी मां की बड़ी इच्छा थी कि उसकी अस्थियां हरिद्वार में गंगा में बहा दें. जीते जी तो कोई सुख नहीं देखा कम से कम मरने वाली की अंतिम इच्छा तो पूरी कर दें.'

मां का अंतिम संस्कार हुए चंद घंटे ही बीते थे. घर के उस गमगीन वातावरण और भविष्य की संभावित कालिमा ने मुझे इस क्रूर भयभीत कर दिया कि मर्यादा की सारी हदें तोड़ते हुए मैं चिल्ला पड़ा - 'घर में नहीं हैं दाने अम्मां चली भुनाने, हम दोनों के खाने-पीने का तो कोई ठिकाना नहीं रहा और आपको हरिद्वार जाने की सूझ रही है.'

पिताजी ने मुझसे इस व्यवहार की तो आशा की ही नहीं होगी. मुंह फाड़े चीर देने वाली निगाहों से मुझे देखने लगे. फिर धीरे से बोले - 'अपने बड़े भाई की नक़ल करना चाहता है ना.'

'मैं उनकी क्या नक़ल कर पाऊंगा उन्होंने तो खूब ऊंची शिक्षा ले ली, आपने भी उनके लिए सारी सुविधाएं मुहैया करवायीं. अब बस मेरे लिए ही आपके पास कुछ नहीं बचा. आगे पढ़ भी नहीं पाऊंगा बस यूँ ही जीवन बिता दूंगा SSS', कहते कहते मैं रो पड़ा. ऐसा कभी मैं रोया होऊंगा इसकी याद तो नहीं है.

पिताजी को मुझसे इस तरह की प्रतिक्रिया की आशा तो एकदम नहीं रही होगी. काफ़ी देर से सिर झुकाये कुछ सोचते रहे. अभी भी उनकी वो मुद्रा और भाव भंगिमा को 'विजुलाइज़' कर के देखता हूँ तो मन में ग्लानि भर जाती है. अपराधग्रस्त मेरे मन को अवसादग्रस्त बनाने पर तुल जाती है. उनको हरिद्वार के घाट पर बैठकर इंतज़ार करने को कह कर चोर की तरह ट्रेन में बैठकर अपने शहर आ गया था. उस समय अपनी करनी ग़लत होने का एहसास था पर अपना गुस्सा तथा खीझ उतारने का यही तरीका उस समय सूझा. पिताजी की आंखों में जाला पड़ गया था जिसे किसी क्लब के शिविर में दिखवा कर इलाज हो सकता है. पर जिस दलिद्वर रोग ने ऐन नाक पर ही हल्ला बोल दिया उसका क्या करूं? इलाज तो महंगा और लंबा है ही, उस पर लोगों का व्यवहार जो बदलेगा उसे सोच कर कै आती है. इन सबके बीच स्वयं का भविष्य कैसे और क्या बन पायेगा यह उलझन तो मेरा जीना मुहाल कर रही थी.

अचानक ही मन में एक क्रूर योजना ने जन्म लिया और मुझे लगा कि इसे कार्यान्वित करने के अलावा और कोई उपाय नहीं है. मां की अस्थियां तो गंगा में बिखेर चुके थे और पैसे पिताजी ने मेरे पास रखवाये थे. इसके अलावा उनकी आंखों की रोशनी

इतनी क्षीण हो गयी थी कि सार्वजनिक स्थानों पर बिना सहारे चल फिर सकना नामुमकिन ही था। क्रोध और बदले की भावना के अलावा उनकी हालत मुझे उनसे बचने को प्रेरित कर रही थी उन्हें अपने से दूर रखने के लिए भी मुझे कुछ करना था। यही उपाय मुझे सरल और शाश्वत लगा। फिर सोचने को ना समय था ना बुद्धि और ना ही किसी व्यक्ति की सदाशयता। मैं उनसे दूर भाग भी जाऊं पर घर के अलावा मेरे लिए पनाह कहां थी? मेरा पीछा करती उनकी मोतियाबिंद से धुंधलायी आंखें भी अपनी तीखी नज़रों का एहसास ही करा रही थीं। सच कहूं तो मुझे ट्रेन में बैठ कर यात्रा में या घर पहुंचने तक कोई अपराध बोध नहीं हुआ। उस समय यह लगा ही नहीं कि मैं कितनी बड़ी भूल कर रहा हूं। अपने जनक के प्रति एक आक्रोश था जिसे शांत करने का मेरे पास शायद यही एक तरीका था।

घर पहुंच कर कुछ रिश्तेदारों को वहां देखा तब जाकर दिमाग में कुछ कुरेदन हुई। इन सब को कुछ गढ़ कर सुनाना पड़ेगा, इनकी जिज्ञासाओं को सही तरीके से शांत करने के अलावा मुझे तो दुख के दुगुने भार से दब जाना चाहिए। सच तब मैं इतना डर गया कि उन लोगों के कहे मुताबिक स्वयं को यतीम मान कर बुक्का फाड़ कर रो पड़ा। एक क्षण को लगा कि दौड़ कर हरिद्वार जाकर पिताजी को ले आऊं। पर जो झूठ एक अटल सत्य की तरह उन लोगों को बताया - 'पिताजी ने मां की अस्थियों के साथ गंगा में कूद कर जान दे दी।' अब इसके बाद इस झूठ या कि अटल सत्य को अपने सीने में दफनाने के सिवाय चारा ही क्या था।

भैया मां की तेरहवीं पर आये, भाभी और बच्चे भी साथ थे। उन्हें पिताजी के बारे में मालूम हुआ। तेरहवीं के लिए तथा पिताजी के जल समाधि व आत्मा की शांति के लिए कुछ कर्मकांड करवाने को आर्थिक मदद की। उन्हें लगा होगा कि बस आखिरी बार (और पहली बार भी) सारे रिश्तेदारों के सामने एक सुपुत्र की छवि रख दें। अब और कुछ तो किसी के लिए करना नहीं है। इसी बीच मुझसे कह दिया, 'यह घर बेच कर तू भी हमारे साथ रहने आ जा वहीं पढ़ाई जारी रखना.'

भैया की उस नकली व मुखौटे वाली भाव भंगिमा तथा भाभी की क्रुद्ध तटस्थता ने भैया की दरियादिली का राज खोल कर रख दिया। मैंने भी नकारात्मक रुख न अपनाकर बिना बहस या विवाद के 'हांSS हां' कह दिया।

सब चले गये थे, सभी। उस घर में बस मैं अकेला रह गया था। भूत की तरह अकेला घर में चक्कर लगा रहा था और स्वयं से

पूछता कि एक बार हरिद्वार का चक्कर लगा आऊं। पिताजी वहीं घाट पर बैठे मिलेंगे क्या? क्या वे मेरे छल को समझ गये होंगे। सोचते-सोचते एक अनहोनी की कल्पना कर के भय से अधमरा हो जाता। कहीं पिताजी किसी की मदद से घर लौट आयें तो? इस ख्याल ने मुझे इस क्रूर भयभीत कर दिया कि बाहर दरवाजे पर जरा सी आहट होती या हवा से खिड़की दरवाजे के हिलने पर धिमी बंध जाती। इन हालात में जीना आर्थिक तंगी से भी अधिक कठिन और जानलेवा हो रहा था। हाथ में ज़रा से पैसे, आगे का जीवन कैसे बिता पाऊंगा कुछ समझ नहीं आ रहा था। क्या करूं कैसे जियूं यह यक्ष प्रश्न मेरे सामने मुंह बाये खड़ा था। तभी एक ऐसी बात हुई जिसने मेरे पाप कर्म के बोझ को बहुत ही वजनी बना दिया।

काफी अर्से से अलमारी अस्त व्यस्त हो रही थी। पहले मां जमाया करती थी, फिर मां की बीमारी के चलते स्कूल और अस्पताल के चक्कर में इतने व्यस्त हो जाते थे कि कुछ समझ ही नहीं आता था कि कब सुबह होती और कब शाम। मां पिताजी की वस्तुओं को हटाना ज़रूरी था जिससे मेरा सामान ठीक से जम जाये तथा कुछ फालतू का सामान हो तो बेच कर कुछ पैसे की व्यवस्था हो जाये। तभी पिताजी की एक कॉपी नुमा डायरी मिली। मेरी सातवीं कक्षा की हिंदी व्याकरण की कॉपी थी। जिसमें मुश्किल से आठ दस पन्ने ही लिखे हुए थे। बाकी कॉपी उनकी लिखी इबारत से भरी हुई थी, कुछ हिसाब कुछ मां के लिए, कुछ मेरे लिए, कुछ अपने लिए भी लिखा था। अलमारी खुली की खुली बिना जमे रह गयी और मैं उस नोटबुक की पुरानी इबारत पढ़ते-पढ़ते कई तरह के एहसासों में डूब उतर रहा था।

ओह! जिस बात के लिए अपने पिता को कोसा, बदला लेकर एक कुपुत्र होने का ठीकरा सिर पर लिया उसकी ज़रूरत ही कहां थी! मैं इसी बात से खफ़ा था और डर रहा था कि मेरी शिक्षा कैसे बिना पैसे के पूरी होगी। पिताजी ने कुछ वर्षों पूर्व ही इसका प्रबंध कर दिया था। पैनी नज़रों की तरह पैने अक्षरों में लिखे चंद वाक्य, "बेटा जिस तरह चिड़िया तिनका-तिनका बीन कर घोंसला बनाती है मैंने भी सीमित आमदनी में से खुरच-खुरच कर कुछ धन तेरी शिक्षा के लिए एकत्र किया है। कितनी कतर ब्यौत करके यह कर पाया शायद बताने की आवश्यकता नहीं है। यह धन और कहीं खर्च न हो जाये इसलिए तेरे अठारवें जन्म दिन पर ही मिले ऐसी व्यवस्था की है। इसे शिक्षा के अलावा और कहीं खर्च मत करना यह मेरा अनुरोध भी है और आज्ञा भी। हो सकता

है मैं या तुम्हारी मां उस समय रहें या ना रहें इसलिए यह प्रबंध किया है.

धन बहुत अधिक नहीं है पर क्या करूं इससे अधिक नहीं जमा कर पाया माफ़ करना बेटा. एक बार हाथ में आ जाये तो कपूर की तरह उड़ जाने में देर नहीं लगेगी इसलिए इसका उपयोग उचित ढंग से बुद्धिमानी से करना होगा. जब तक मैं हूँ तुम्हें खाने-पीने की तकलीफ़ नहीं होने दूंगा.

तुम्हारा, बदनसीब बाप.”

सही में बदनसीब ही तो थे. यह सोचते हुए जीभ काट ली. बड़े बेटे ने अपना काम हो चुकने पर किनारा कर लिया और हत्भागामैं जीवित बाप का तर्पण कर बैठा.

एकाध वर्ष लगा मुझे अपने आपको एक हद तक क्राबू में लाने को, संतुलित करने को. किसी तरह शिक्षा ग्रहण की और साथ में पार्टटाइम काम भी किया. हर क्रम हर स्तर पर मां पिताजी की कमी इतनी शिद्दत से महसूस की कि अक्सर रो पड़ता था. इतनी व्यस्त दिनचर्या बना ली थी कि अपने किये को भूलने का प्रयत्न तो कर सकूँ. शिक्षा, नौकरी, विवाह जैसे सबका होता है उसी क्रम में मेरा भी हुआ. सबकी तरह रोता-गाता हंसता रहा पर मेरा मन लगातार रोता ही रहा. लोग मुझे संवेदनशील, संजीदा और ना जाने क्या-क्या समझते थे, पर मैं लोगों की नासमझी पर ना हंस पता था ना रो पाता था.

आज आश्रम के बगीचे में बेंच पर बैठे उन वृद्ध महोदय ने अपनी नज़रों से मुझे मेरे पापकाल में ढकेल दिया. साथ ही मेरे सम्मुख एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया, कहीं वे मेरे पिताजी तो नहीं? क्या यह संभव है कि वे किसी तरह यहां पहुंच गये. आंखों की सर्जरी भी हो गयी हो. असंभव भी तो नहीं है. मैंने उनकी नाक पर गौर नहीं किया, करता तो शायद रहस्य पर से पर्दा हट जाता.

उस दिन घर देर से पहुंचा पर जब पत्नी को मालूम हुआ कि मैं वृद्धाश्रम गया था तो मानो उसे किसी समस्या का हल मिल गया. ‘आपने अच्छा किया जो आश्रम देख आये हमें बाबूजी की पुण्य तिथि की सही-सही जानकारी तो है नहीं कुछ और भले ही ना कर सकें यहां अन्नदान कर सकते हैं. साथ ही बाबूजी की उम्र के लोगों से मिल सकते हैं. बाबूजी को तो मैं देख भी नहीं पायी.’

पत्नी की बात ही ऐसी थी कि असहमति का सवाल ही नहीं था. मेरे लिए वृद्ध महोदय की नाक गौर से देखकर जिज्ञासा शांत करना भी जरूरी था. पंद्रह वर्ष पूर्व मेरा बोला झूठ सत्य के महीन जाल से इस तरह ढंक गया था कि मैं जाल के इस तरफ एक

खुशफ्रहमी में जीना सीख गया था. अब उन सज्जन को देखने पर ना जाने किस स्थिति का सामना करना पड़े. वहां जाने के पहले ये बीच के दिन मन गुणा भाग करता रहा. वो सज्जन मेरे पिता हो सकते हैं या नहीं हो सकते. संभावना और असंभावना की ऐसी निकटता मैंने पहली बार जानी. जब संभावना का पलड़ा भारी हो जाता तो घबराहट बढ़ जाती. यदि उनको मैं पहचान लूं भी तो घर ला पाऊंगा इसमें संदेह है. अपने बोले झूठ को असत्य निरूपित करना मेरे लिए कठिन ही नहीं असंभव भी होगा. जोश में या अंतर्मन की आवाज़ सुन कर निर्भीक होकर अपने झूठ को झुठलाते हुए सत्य बोल भी दूं तो मेरा जीवन क्या यूं ही रह पायेगा इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही होगा इसमें कोई शक या गुंजाइश ही नहीं है. सत्रह वर्ष की उम्र से ना जाने किस अदृश्य सहारे को पकड़कर जीता चला आ रहा हूं. कभी-कभी यह सहारा इतनी ओट में जा छिपता कि मैं खुलकर सांस न ले पाता और लोगों को लगता कि मैं अन्य लोगों की तरह सामान्य तरह से जीवन यापन कर रहा हूं.

नियत दिन पत्नी के साथ आश्रम गया. पिछली बार यहां आने के बाद चार महीने तो हो ही गये थे. वैसे भी खुल कर ना बोल पाना मेरी तबीयत की तासीर है ही. सो एक बार यहां आने पर भी किसी के चेहरे पर परिचित होने के कोई चिन्ह ना मिले तो आश्चर्य की क्या बात है? पत्नी तो वहां के कर्मचारियों से बातों व जानकारियां लेने में इतनी मशगूल हो गयी मानों पुरानी पहचान हो. उसे उन लोगों के साथ छोड़ कर मैं यूं ही टहलता हुआ हॉल, बगीचे और पीछे बगिया में निकल आया.

‘आ गये! स्वागत है हम में से एक के नाम तर्पण करने का अवसर ले सकते हो.’ बायीं ओर टमाटर बैगन की क्यारी में से आवाज़ आयी. मैंने चौंक कर देखा. जोशी दादा एक नीचे से स्टूल पर बैठे हुए क्यारी में गुड़ाई कर रहे थे. उनको देख हाथ स्वयमेव ही नमन की मुद्रा में आ गये पर मुंह से बोल नहीं फूटे. तभी पत्नी भी उन लोगों के साथ उसी तरफ आयी. वे लोग पत्नी को पूरी जगह का विस्तार व वहां के कार्यकलाप समझा रहे थे.

‘कितना सुंदर बगीचा है. अरे अमरूद और नींबू भी लगे हुए हैं. इतनी साग सब्जी लगी हुई है, पर यहां इतने लोगों को कहां पूरी पड़ती होगी.’

‘अजी पूरी कैसे पड़ेगी, हमारा उद्देश्य यह है कि इन लोगों का दिल बहला रहे, पर्यावरण का महत्व समझा सकें, कुछ शारीरिक श्रम हो, साथ ही अपनी मेहनत की उपज को देख खुशी भी महसूस हो.’

‘बच्चे पैदा करने से तो अच्छा है साग-भाजी पैदा करें, काम तो आती हैं. क्यों ठीक है ना.’ जोशी दादा हम लोगों को देखते हुए मज़ाक़ की तरह बोले. ‘आप एकदम से ऐसा नहीं बोल सकते बच्चे क्या मां बाप की देखभाल नहीं करते.’ ये दलील मेरी पत्नी की तरफ़ से थी.

‘आज कल तो ऐसा ही हो रहा है. अधिकतर बच्चे अपने बूढ़े होते माता-पिता को घर से बेदखल कर रहे हैं. तभी तो जगह-जगह इतने आश्रम खुल रहे हैं.’ जोशी दादा की जीभ पर तीखेपन और व्यंग्य की चाशनी चढ़ी हुई होती और आंखों में शरारत, होंठों पर भोली सी मुस्कान.

कोई और दिन या माहौल होता तो पत्नी तुर्की-बतुर्की जवाब देती. आसानी से चुप भी नहीं होती और छोड़ती भी नहीं. उस दिन इतना बोल कर चुप हो गयी, ‘हैं कुछ ऐसे लोग पर सब एक से नहीं होते.’

मेरी नज़रें लगातार कुछ खोज रही थीं. आखिर मैं पूछ ही बैठा, ‘पिछली बार एक सज्जन को बाहर के बगीचे की बेंच पर बैठा देखा था. चुप-चुप से बस गहरी नज़रों से देखते हुए, आज दिखाई नहीं दे रहे हैं.’

कुछ देर कर्मचारी अंदाज़ लगाता रहा. तभी जोशी दादा बोले - ‘ये उनको पूछ रहे होंगे जो अपने बारे में कुछ बता नहीं पाये या बताना नहीं चाहते थे. शाम को बेंच पर गुमसुम से बैठे रहते, बस कभी किसी की बात पर मुस्करा देते या छोटा सा जवाब दे देते थे.’

कर्मचारी बोला - ‘पर वो देख कहां सकते थे?’

‘वे देख नहीं सकते थे, पर कितनी ही बार हम लोगों को भी धोखा होता था. ये तो नये हैं.’

फिर मेरी ओर देखकर बोले - ‘बेटा उनको मरे तो एक महीने से ऊपर हो गया. शायद बहुत दिन बाद आये हो तभी खबर नहीं हुई.’

एक के बाद एक झटका मिल रहा था. उन नेत्रहीन सज्जन को अपनी ओर घूरता पाया, अपने पिता होने की शंका मन में उपजाई और अब उनकी मृत्यु मुझे एक अलग ही एहसास में ले जा रही थी.

आगे और क्या पूछ सकता था, किस हक़ से पूछ सकता था. हो सकता है बिना इलाज के उनका मोतियाबिंद बिगड़ गया हो और नेत्रहीन हो गये हों. हो सकने को क्या नहीं हो सकता पर कोई भी होनी या अनहोनी उस दिन मेरे किये से अधिक आश्चर्य

लघुकथा

उम्मीद

✍ सुषमा सिन्हा

दो बेरोज़गार अपनी स्थिति से बहुत परेशान बैठे थे.

एक ने कहा - ‘यार भगवान कहां है? क्यों नहीं सुनता हमारी बात? क्यों नहीं देखता है हमें?’

दूसरे ने कुछ नहीं कहा, बस ऊपर की ओर इशारा कर दिया.

पहले ने फिर कहा - ‘ठीक है, भगवान ऊपर है, पर आखिर कितना ऊपर है कि हमारी बात वहां तक नहीं पहुंचती?’

दूसरे ने फिर कुछ नहीं कहा, बस खामोशी से दूर ऊपर आसमान के शून्य में देखता रहा.

पहले ने फिर कहा - ‘काश! कोई सीढ़ी होती.....’

‘सीढ़ी...?’ दूसरे ने चौंक कर पूछा.

‘हां....सीढ़ी....मतलब कोई एक इमीडिएट बॉस होता, फिर उसका एक बॉस यानि कोई कन्ट्रोलर होता, फिर कोई विभागीय हेड होता अर्थात ऊपर वाले विभाग का...तो फिर हम अपनी बात इन सीढ़ियों के जरिए ऊपर वाले तक पहुंचा सकते.’ पहले ने कहा.

दूसरे ने कड़वा सा मुंह बनाया और कहा - ‘यार! बहुत अच्छा है कि ऊपर वाला किसी को दिखता नहीं, किसी की जल्दी सुनता नहीं, किसी से मिलता नहीं. वरना हरे-हरे नोटों की भाषा वहां भी समझी जाने लगती तो जीवन और मृत्यु की भी बोली लगती....फिर हमारे जैसे लोगों का अस्तित्व ही नहीं होता इस दुनिया में, तो रोजगारी और बेरोज़गारी क्या होती?’

पहले ने कहा - ‘हां! यार ठीक ही कहते हो, कम से कम ऊपर वाले के यहां देर हो सकती है, अंधेर तो नहीं,....चलो घर चलते हैं.’

✍ अशोक बिहार एक्स. (प), रांची - ८३४००२

वाली बात हो ही नहीं सकती. जो राज़ उस दिन सीने में दफ़न कर लिया था उसकी और कोई माकूल जगह भी नहीं है. इतिहासवेत्ता तो हूं नहीं कि कब्रों को खोद कर देखूं, ना ही सबूतों का अभाव कि फैसला गुनाही या बेगुनाही के पशोपेश में पड़ा हो. उस दिन मुझसे जो भी हुआ वह अटल सत्य है और मेरे द्वारा किया गया भीषण अपराध.

मुझ सज़ायाप्रता कैदी को सांस चलने तक तिल-तिल कर मरना ही है. मेरे अपराध की सज़ा मेरे अच्छे आचरण या व्यवहार से किसी भी तरह कम नहीं हो सकती.

✍ ४१ डी/डी/एस-३, स्कीम-७८, अरण्यनगर,

इंदौर - ४५२०१०, फोन - ०७३१-२५५८६४३

बस, चाय का दौर था और चर्चाएं थीं

यह कल्पना करना मुश्किल था कि हमारी तरफ बढ़ रहा खूबसूरत, कम उम्र जवान, ऊंचे ओहदे पर आसीन आई. ए. एस. अफसर है. महेंद्र, उसकी छोटी बहन, तथा उसके एक-दो करीबी दोस्तों के चेहरों पर उसकी आवभगत के कोई चिह्न नज़र नहीं आ रहे थे. महेंद्र के इस बर्ताव से मुझे आश्चर्य हो रहा था. आखिर महेंद्र की शादी हो रही थी और तौफ़िक़ उसका बचपन का सहपाठी था.

तौफ़िक़ को दूर ही से आता देख महेंद्र खुसफुसाने लगा, “इसे तो बुलाया नहीं गया, फिर क्यों आ गया?” इसके विपरीत तौफ़िक़ बड़े जोश में दिखाई दे रहा था. महेंद्र आदि बेरुखी से ‘हैलो’ कहकर ही रह गये.

इधर-उधर की बातें करते दो घंटे बीत गये. तौफ़िक़ उठने का नाम नहीं ले रहा था. रात के नौ बज चुके. हम गिने-चुने मित्र लॉन से उठकर महेंद्र के कमरे में चले गये.

तौफ़िक़ एकदम बेबाक हो गया.

“यार शराब पिलाओ.....वरना तुम्हारी शादी का जश्न मना है, ऐसा समझा ही नहीं जायेगा.”

“लेकिन तुम्हें बुलाया किसने था!” महेंद्र ने चुटकी ली.

“मुझे तुम्हारी शादी से थोड़े ही कुछ लेना देना है. मैं तो तुमसे दारू की पार्टी लेने आया हूँ.” तौफ़िक़ ने बेशर्मी से मुस्कराते हुए जवाब दिया.

“तुम ससाले भिखमंगे हो!” महेंद्र ने कहा.

सब खिलखिला उठे. महफ़िल सजी. शराब के दौर शुरू हुए. आपसी गाली-गलौज के साथ हुस्न-इश्क की शायरी भी चल पड़ी. पहले स्तरीय, फिर घटिया. अंग्रेजी साहित्य पर गुफ़्तगू हुई.

गुफ़्तगू क्या, सब एक तरफ़, तौफ़िक़ एक तरफ़. वह किसी की बात मान नहीं रहा था. औरों को तौफ़िक़ की दलीलें वज़नदार नहीं लग रही थीं. शाब्दिक गरमागरम बहस प्रत्यक्ष बदतमीज़ी में बदल गयी. दोस्त तौफ़िक़ के बदन पर लोटते, कभी तौफ़िक़ दोस्तों के बदन पर. नशे में चूर उन्होंने एक दूसरे की बहन-बीवी

तक मांग ली.

सबसे ज़्यादा किसी ने पी होगी, तो तौफ़िक़ ने. वह सच में किसी भिखारी की तरह समेटे जा रहा था. शराब के चढ़ते ही अपनी औकात पर उतर आया. लगातार अपने कपड़े उतार फेंकने पर आमामादा हो गया. दोस्त उसे थामे रहे. किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था - क्या कहें, क्या करें. हालात का और परवान चढ़ना मुश्किल था.

११ राजेंद्र पांडे ११

□

“तौफ़िक़ आपसे माफी मांग रहा था. कह रहा था, उसे ऐसे पेश नहीं आना चाहिए था.” सुबह महेंद्र तौफ़िक़ का संदेश लेकर मेरे कमरे में आया.

“लेकिन महेंद्र आप लोग इस सीमा तक बढ़ जाते हैं?”

बाक़ी मित्रों का व्यवहार तो प्रतिक्रिया-स्वरूप था, तौफ़िक़ के व्यवहार को लेकर मैं अचरजभरा था.

“उसकी ज़िंदगी में बहुत सारी निराशाएं हैं.” महेंद्र ने उसके प्रति हमदर्दी जतायी. “मामा ने उसे छोटे से बड़ा किया, लिखा-पढ़ा कर आगे बढ़ाया. बदले में अपनी बदसूरत और फूहड़ लड़की उसके मत्थे मढ़ दी. जीवन में बीवी से उसे समाधान नहीं मिला.”

महेंद्र की बातें सुनकर एक और निराश नौकरशाह की ज़िंदगी मेरी आंखों के सामने तैरने लगी. निराशा में ही उसने नौकरी छोड़ दी. और दारू पी पी कर भगवान को प्यारा हो गया. ...नरेशचंद्र आई.ए.एस., संयुक्त सचिव, वित्त मंत्रालय.

□

करण और मैं सचिवालय के एक कक्ष के सामने जाकर रुक गये.

वे भीतर नहीं थे. लेकिन उनका कक्ष बिजली की रोशनी से जगमगा रहा था. पंखों की हवा दीवारें खा रही थीं. हमने उनके कार्टर पर संदेशा भिजवाया.

लगभग आधे घंटे में एक गोरे चिट्ठे, ऊंचे युवक ने प्रवेश किया. पहनावे और अदाओं से कोई फ़िल्मी हीरो जंच रहा था. उसे देखते ही मैंने करण के कानों में चुपके से कहा, “ये ग़लत पेशे में आ गये. इन्हें तो फ़िल्मों में हीरो बन जाना चाहिए था.”

करण ने ठहाका लगाया और मेरे शब्द दोहरा दिये. नरेशचंद्र गर्व से मुस्करा दिये...., “मुझे अभी भी आशा है!”

नरेशचंद्र उन्मुक्त चर्चा के लिए माहौल बनाना चाहते थे. इसलिए कमरे की खिड़कियों को परदों से ढंक दिया. रोशनी मध्यम कर दी. एक घरेलू शीतल वातावरण का समां बनाया. जूते और मोज़े उतार कर एक कोने में फेंक दिये. जेब से चिरूट निकाल उसमें तंबाखू भरते हुए सामनेवाली मेज़ पर पैर पसार कर बैठ गये. चपरासी से कह दिया कि केबिन में किसी को घुसने न दिया जाय.

करण और नरेशचंद्र में एक समानता थी. दोनों साहित्य जगत में हाथ पैर मार रहे थे. लेकिन कोई नतीजा सामने नहीं आ रहा था. करण को जमे हुए साहित्यकारों से चिढ़ थी, सचिव महोदय को साहित्यिक चोंगे से ही अलगाव हो गया था.

“अब कुछ लिखने को जी नहीं चाहता. कविताएं लिखीं, पुस्तक छप जाने पर कविताएं लिखने की इच्छा नहीं होती. उपन्यास लिखा, वह कहीं छप नहीं रहा. कुछ दिनों से फ़िल्मों की ओर बढ़ने का इरादा ज़ोर पकड़ रहा है. लेकिन बात वहां भी बन नहीं रही है.”

“भई लिख भी लो तो क्या....ये रास्ते के पत्थर आपको आगे बढ़ने देने से रहे.” करण ने अपनी घुटन प्रकट की.

इतने में मराठी के दो मशहूर लेखक-पत्रकार आये. एक के राजनीतिक उपन्यास पर बनी फ़िल्म ने तहलका मचा दिया था. उन्होंने खबर दी--

“आपके उपन्यास का मराठी अनुवाद क्षीरसागरजी ने पढ़ा. उन्होंने आपके लेखन की तारीफ़ की है.”

“सच?”

“सच का सवाल ही नहीं. आपको बधाई. आपका उपन्यास अब मराठी में छप रहा है.”

सचिव महोदय गद्गद् हो गये.....“मैं सोच रहा हूं, अब सिर्फ़ मराठी में ही लिखूं.”

मराठी का उन्हें थोड़ा ज्ञान था. लेकिन शायद ही मराठी उन्हें रास आती. सांप-छछूंदर जैसी उनकी स्थिति थी. क्या करूं, क्या न करूं! नौकरशाह के रूप में उनका एक-एक रोज़ का



2-7-2018

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी तथा समाजशास्त्र)

लेखन : चौदह विधाओं में ४० से अधिक कृतियां.

विशेष : दृश्य श्रव्य माध्यम हेतु पटकथाएं तथा गीत, ‘पटकथा कैसे लिखें’, ‘पटकथा लेखन’ (पुस्तकें), पत्र-पत्रिकाओं में वैचारिक तथा चिंतनपरक लेख, विक्रमोर्वशीयम्, प्रियदर्शिका, (रेडियो रूपक) देहाती समाज पर श्रृंखलाबद्ध रूपक लेखन.

संप्रति : मुंबई में स्वतंत्र लेखन, शब्द कर्म तथा कला कर्म.

अनुभव गाढ़ा था. उनमें आत्मसम्मान की भावना भी थी. सामाजिक छवि उन्हें अनैतिक रास्तों पर चलने से रोक रही थी. साहित्यिक जीवन में उन्हें नीरक्षीर विवेक बुद्धि दी थी. इसलिए झुंझलाहट और दुविधा का भूत उन पर सवार था.

“हम ससाले सफ़ेदपोश! जब तक दस लोगों का सलाम न लें, हमें खाना हज़म नहीं होता. ऊंचे-ऊंचे ओहदों की लालसा भी रखते हैं और साहित्य में भी तीर मारना चाहते हैं. जयशंकर प्रसाद, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पूरा जीवन साहित्य की सेवा में खपाया. प्रेमचंद ने जीवन को समझा, उसी समझ को कागज़ पर उतारा. हम सिर्फ़ गुलामी करना जानते हैं, और अवसर तो उनके हाथों में हैं, जो उन्हें छीनने में माहिर हैं.”

करण हां भरने वाला ही था कि कमरे में घुस रहे सत्यप्रकाश ने प्रतिवाद किया, “ऐसे कैसे हो सकता है! अवसर छीनने का वक्रत तो तब आता है, जब हमारे सामने अवसर हों.”

“आओ, भाई आओ.” सचिव ने उनका स्वागत किया, “पता नहीं आज सूरज किधर से उगा है. एक के बाद एक महान लोग चले आ रहे हैं.”

सत्यप्रकाश सचिव द्वारा लिखी फिल्म का निर्देशन कर रहे थे. लगभग दो-तिहाई फिल्म पूरी कर लेने के बाद पैसों की कमी की वजह से छह महीने से फ़िल्मांकन बंद पड़ा था. सत्यप्रकाश किसी दूसरी ज़िम्मेदारी में उलझ गये. लगातार की फ़ोनबाज़ी के बाद आज वे अगले क्रम पर विचार विमर्श करने के लिए नरेशचंद्र से मिलने आये.

“हम लोग अवसरों की तलाश में रहते ही नहीं,” यह मेरा आशय था. सचिव ने बात दुहराई, “जो मिल जाय, उसी से हम तसल्ली कर लें, तो ज़िंदगी में कुछ करने की इच्छा ही नहीं रहती. चाहे सही रास्ते पर चलें या ग़लत. मैंने अपनी कोई इच्छा अधूरी नहीं रखी. छोटे-बड़े सभी ज्योतिषियों को कुंडली और हाथ दिखाये. किसी ने कहा, आप रात में जो सोचोगे, वह दिन निकलते ही गायब हो जायेगा. किसी ने कहा, जहां आप हैं वहीं बने रहेंगे, बने रहिए. साहित्य या कला जगत में जोर लगाने के कारण परेशानियां तो जीवन में आयेंगी ही. उस लिहाज़ से कामयाबी नहीं मिलेगी!”

सुनते ही करण ने अपना नुस्खा सुझाया, “भाई हमारे पिताजी को भी ज़िंदगी में बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ा. किसी ने सलाह दी कि कुलदेवता को पूजिए. हमारे कुलदेवता हनुमानजी हैं. हमने उन्हें पूजा. सच में, उन्होंने हमें शक्ति दी. सब ठीक ठाक हो गया.”

“कुलदेवता-बुलदेवता कोई मायने नहीं रखता.”

सचिव, सत्यप्रकाश की ओर मुस्कराते हुए देखते एकदम उछल कर बैठ गये. उनमें बिजली सी चपलता आ गयी. वे अपनी ही मिसाल देकर जीवन की उपलब्धियों को सही ठहराने लगे.

“मैं गांव में पोस्टमास्टर के घर पैदा हुआ. गांव में ही मिडिल तक पढ़ा. क्रिस्मत से शहर जाने को मिला. वहां बी.ए. तक पढ़ाई की. पढ़ाई में तोप थे नहीं, इसलिए आगे पढ़ने की भी इच्छा नहीं हुई. आज जब गांव जाता हूं तो देखता हूं कि हमारे साथ के पढ़े लड़कों में से कोई बढ़ा है, तो एक, उसी गांव का सरपंच. दूसरा, स्कूल का हेडमास्टर. क्रिस्मत साथ न देती तो हम भी ऐसा ही कुछ कर रहे होते. अच्छी सेहत थी, तो फ़ौज में कमीशन मिल गया. वहां कुछ साल नौकरी करने के बाद पता चला कि आई.ए.एस. बन सकते हैं. सिर्फ़ तीन पर्चे दिये और आई.ए.एस. बन गये.”

“वरना इस तरह छलांगे लगाना आसान बात है भला?” करण ने चुटकी ली. सत्यप्रकाश जबरन मुस्करा दिये.

सचिव महोदय बिना रुके आगे कहने लगे, “एक दो जगह कलक्टर रहे और इतनी कम उम्र में सचिवालय में आ गये. लोग तरसते हैं इस जादुई महानगर मुंबई में आने को. यहां क्या नहीं है? साहित्य, फ़िल्म, कलाएं, सभी कुछ मौजूद है. गतिशील जीवन है. हर तरफ जगमगाहट और चकाचौंध है, पब्लिसिटी है और फिर ओहदा भी तो माने रखता है.”

“वरना बग़ैर तामझाम के कुछ हासिल होता है भला? जूझते रहो जीवनभर. हम तो भई वही कर रहे हैं.” भुक्तभोगी सत्यप्रकाश ने बड़ी सादगी से अपना अनुभव सुनाया.

“लेकिन आप लोग करते क्या हैं?” करण ने दोस्ताना लहजे में नौकरशाही पर चोट की.

“क्या करते हैं?” नरेशचंद्र तैश में आ गये, “ये अनपढ़ गंवार नेता, जिन्होंने स्कूल का मुंह तक नहीं देखा, हम पर राज करते हैं. उनके हुक्म का पालन हमें करना पड़ता है. क्या इसीलिए हमने जीवन में इतनी मेहनत कर तरकी की है.... मैं जानता हूं एक नेता को, वह बंजारों और आदिवासियों को इकट्ठा करता है. उनसे दूरदराज़ की पहाड़ियों पर घासफूस की झोपड़ियां बनवाता है. फिर उन्हें जला देता है. बंजारों, आदिवासियों और कुछ गुंडों को साथ लेकर सचिवालय पर मोर्चा ले आता है. उन्हें मुआवज़ा दिलवाने की मांग करता है. बढ़ा-चढ़ाकर, जो कुछ मिलता है, उसमें से आधा हिस्सा खुद रखता है आधा उनमें बांट देता है. मुंबई में भी इसी तरह झोपड़ियां उगाई जा रही हैं. हर रोज़ नेताओं का तरह तरह का नंगापन उजागर होता है. यह उस देश में हो रहा है, जहां लोगों को रोटी, कपड़ा, मकान तक नसीब नहीं होता. नालियों में बहता पानी पीते हैं, कूड़े में खाना तलाशते हैं, आकाश तले रहते हैं. कौन समझदार और संवेदनशील व्यक्ति ऐसे हालात देखकर अपना सिर नहीं धुनेगा? मैंने नेताओं की कई प्रकार की ठगी को कैबिनेट में उजागर किया है, लेकिन किसी के कान पर जूं नहीं रेंगती. आखिर मंत्री भी इन्हीं में से एक है. लगता है, इस देश का बंटोधार होने को है!”

कुछ देर के लिए वातावरण सुन्न हो गया. सत्यप्रकाश ने चुप्पी तोड़ी - “और ऐसा नेता जब चुनाव में खड़ा होता है तो शराब और पैसे बांट कर, लंदफंद कर चुनाव जीत जाता है. जाहिर है, हम वोट बेच रहे हैं वह खरीद रहा है.”

“नेता भी तो हमारी ही देन है. ईमानदार और देशसेवक को हम इज़्जत नहीं देते. उसके पीछे भागते हैं, जो हौआ खड़ा करता रहता है. शायद कपोल कल्पित ज़िंदगी के पीछे भागना ही

लघुकथा

हवाएं

✍ कृष्ण शर्मा

श्रीनगर जा रही बस, चालक को कुछ देर के लिए जवाहर टनल के इस ओर रोक लेनी पड़ी, क्योंकि टनल में मरम्मत का काम चलने के कारण उस रोज़ वहां यातायात 'बन-वे' चल रहा था।

इस दौरान सभी लोग बस से नीचे उतरे और सड़क पर चहल-कदमी करने लगे। सामने 'पीर-पंचाल' की विशाल पर्वत श्रेणी अपनी ऊंचाई और विशालता पर जैसे मुस्करा रही थी। उसी को देर तक निहारते रहने के बाद एक व्यक्ति ने पास खड़े अपने साथी को कहा - "भई, यही वे पहाड़ हैं जो हमारी वादी को गर्मियों में उधर के मैदानी इलाकों की ओर से आने वाली गर्म व गलीज़ हवाओं से हमें बचा लेते हैं...."

महसूस हुआ, जैसे उस व्यक्ति ने जान-बूझ कर ऊंचे सुर में ये शब्द निकट ही खड़े दो-तीन लोगों के एक समूह को विशेष तौर पर सुनाने के लिए कहे हैं। समूह में से एक व्यक्ति खामोश नहीं रह सका, तो उसने चिल्लाकर तुरंत कहा - "अरे मियां, यह क्यों भूल रहे हो कि यही पहाड़ सर्दियों में हमारे मैदानी इलाकों में यख़ ठंडी बर्फीली हवाओं के प्रवेश को रोक देते हैं....इस तरह यही पहाड़ हमें भी राहत प्रदान करते हैं."

मैंने गौर किया कि दोनों पक्ष के लोगों को एक-दूसरे का तर्क पसंद नहीं आया था। नौबत शायद हाथापाई तक भी जा पहुंचती, यदि उसी समय चालक लगातार हॉर्न बजाकर बस के चलने की सूचना न दे देता।

कुछ ही पलों उपरांत बस में बैठा मैं सोच रहा था कि इन्हीं छोटी-छोटी बातों के कारण समाज में क्षेत्रवाद रूपी दीमक फैलती है, जो बाद में जातिवाद में परिवर्तित होकर देश को अंदर ही अंदर खोखला करती रहती है।

अगले मोड़ के पीछे बस बिल्कुल ओझल हो जाती, इससे पहले ही मैंने एक भरपूर नज़र दूर-दूर तक फैले पहाड़ों की ओर देखा, तो लगा कि पहाड़ जैसे अब भी मुस्करा रहे थे - थोड़ा हमारी संकीर्णता पर और थोड़ा हमारी तुच्छता पर!

✍ १५२/११९, पक्की ढक्की, जम्मू-१८०००९

हमें पसंद है....और इसी उधेड़बन में हम दशक के बाद दशक गंवा रहे हैं....पीढ़ी के बाद पीढ़ी!"

"यह पूरा ढांचा ही सड़ा हुआ है। हम एक-दूसरे के इतने करीब और पूरक हैं कि कोई किसी पर उंगली नहीं उठा सकता....सही मायने में उठाना नहीं चाहिए." सत्यप्रकाश ने कहा।

"इसीलिए तो भाई हम साहित्यकार लोग कहने की आज़ादी चाहते हैं, ताकि जो कहना चाहें, ज़ोर देकर और साफ़-साफ़ कह सकें." करण की बात में मगर आत्मविश्वास का अभाव था।

सचिव झल्ला उठे.....

"जो ताक़तवर हैं, वे हर प्रकार के दबावों से परे हैं। आम आदमी सहमा हुआ है। उसमें व्याप्त निराशाएं उसे राह से भटकती हैं, उसका जोश छीन लेती हैं। हम जैसे निष्क्रिय लोग सिर्फ़ चर्चाएं करते हैं।क्या करोगे कहने की आज़ादी को लेकर?"

वाक़ई में हम चर्चाएं ही कर रहे थे। चर्चाएं, जो अक्सर अपने भीतर की हीन भावना को उजागर करती हैं, इस बदचलन

दुनिया में जबरन सिद्धांतवादी बने रहने की बेबसी को बार-बार अनुभव करती-कराती हैं...चर्चाएं जो हमें किताबी होने का अहसास दिलाती हैं।

जो कभी चिढ़, गुस्सा, तो कभी गुदगुदी देती हैं - कभी तौफ़िक़ को, कभी महेंद्र को तो कभी करण, सत्यप्रकाश और नरेशचंद्र जैसे अनगिनतों को अपने में लपेटती हैं।

हम तीन बजे आये थे, अब छः बजे रहे थे। दो-तीन बार चपरासी भीतर आया तो नरेशचंद्र ने उसे भगा दिया। फ़ाइलें आयी तो उन्हें टेबल पर रखवा लिया। कागज़ आये तो सरसरी निगाह डाल उन्हें संबंधित अधिकारियों के पास भिजवा दिया। किसी को भी...सरकारी या निजी काम से अंदर आने की मनाही थी।

बस चाय का दौर था और चर्चा थी...चर्चाएं थीं!

✍ ८सी/१३, प्लॉट-५, एन.एन.पी.कॉम्प्लेक्स,
फ़िल्मसिटी रोड, गोरेगांव (पू.), मुंबई-४०० ०६५,
फोन-९८२१०८४१९४

मध्यांतर

आकाश बिस्तर पर पड़ा करवटें ले रहा था. उसके उठने का समय हो गया था, लेकिन वह अभी भी सपने देख रहा था. आंखें खोलीं...सूरज की किरणें खिड़की से अंदर आ रही थीं. लेकिन वह उठना नहीं चाहता था. उसका मन कर रहा था कि वह लेटा ही रहे, सपने देखता रहे, सपने देखने में कितना मजा है....

काफी की सुगंध और पत्नी की आवाज़ क्या उसे लेटने देगी! आंखें खोलीं तो सामने पत्नी खड़ी थी. पत्नी की मुस्कान, नहाने के बाद गीले बाल, सुबह-सुबह किया उसका थोड़ा-सा श्रृंगार उसे अच्छा लगा. वह रोमांचित हो उठा और उसने पत्नी को अपनी ओर खींच लिया.

“छोड़ो न! उठो और काफी पियो....तब तक आपका नाश्ता तैयार करती हूँ...” कहते हुए पत्नी ने अपने आपको छुड़ा लिया.

काफी पीते-पीते उसके मन में छोटा सा सपना साकार होने लगा. कई महीनों के बाद आज एक ऐसा अवसर आया है. जब ऑफिस की छुट्टी है. छुट्टी कैसे मनायी जाय....उसके मन में यह बात आ रही थी. पिताजी की लंबी बीमारी, उसके बाद उनकी मौत, फिर उनके क्रियाकर्म में व्यस्तता आदि के कारण वह पूरी तरह अपने आप में सिमट आया था. पत्नी से दूर ही रहा था. पर आज वह ऐसा महसूस करने लगा कि उसके अंदर चेतना फिर से जागृत हो रही है. मन चुस्त, उत्साहित हो गया है. उसने सोचा कि हल्का नाश्ता करके वह माटुंगा जायेगा और फुटपाथ पर बिकने वाली किताबें देखेगा. कुछ ‘रंगीन’ किताबें रात में पढ़ने के लिए, पत्नी के लिए तमिल पत्रिकाएं, बेटे के लिए खेलकूद की पत्रिका खरीदेगा. बाद में मैसूर कैफे में काफी का स्वाद और आनंद लेगा. घर के लिए मिठाई-नमकीन खरीदने के बाद आराम से घर वापस लौटेगा. भरपूर मजे लेकर छुट्टी गुजारेगा. दिन में आज पत्नी को खुश रखना है...तभी रात को कुछ आनंद मिल पायेगा!

वह बिस्तर से उठा. उठकर दांतों को ब्रश करने लगा. जैसे ही नहाने के लिए बाथरूम गया तभी फोन की घंटी की आवाज़

उसके कानों पर पड़ी. वह कपड़े उतार कर शॉवर के नीचे ही था कि बाहर से पत्नी की आवाज़ सुनाई देने लगी.

“...हॅलो....अभी नहाने गये हैं....आप कृपया दस-पंद्रह मिनटों के बाद फोन कीजिए....ठीक है....”

जैसे ही आकाश नहाकर बाहर आया, फोन की घंटी फिर बजने लगी.

पत्नी से कहा...“तुम फोन उठाओ. कह देना कि मैं घर पर नहीं हूँ.”

पत्नी ने उत्तर दिया, “तुम ही क्यों नहीं उठा लेते.”

॥ डॉ. वी. रामशेष ॥

“मेरे लिए प्लीज, आज सिर्फ एक बार फोन पर बात कर लो,” आकाश ने कहा.

पत्नी ने फोन उठाया, “हॅलो. जी हां, यह आकाश जी का घर है...लेकिन वे घर में नहीं हैं. माफ़ करें....जैसे ही वे आ जायेंगे उनको बता दूंगी.”

आकाश नाराज़ हो गया. उसने पत्नी से कहा, “अरे, कह देती कि शहर से ही बाहर चले गये हैं.”

“कैसे कहती? बहुत ज़रूरी बात है...तुम्हारे मित्र भाटिया का फोन था...आपका दोस्त ‘राघवन’ दिल के दौरै...यानी हार्ट-अटैक से मर गया,” पत्नी ने कहा.

“अरे यह कैसे हुआ? ना तो राघवन को ब्लडप्रेसर था ना ही कोई और बीमारी? अब तो परिवार मुसीबत में पड़ जायेगा...उसका लड़का बी.कॉम फाइनल पढ़ रहा है. और उसकी लड़की माला भी तो दसवीं में पढ़ रही है,” आकाश ने जवाब दिया.

“मेरे ख्याल में आपके दोस्त की असामयिक मौत का मामला आपके ऑफिस से जुड़ा हुआ लगता है. ऑफिस के माहौल से इस वर्ष आपके एक दोस्त जिसका नाम क्या था...जिसको दिल का दौरा पड़ा था है ना!”

“गोखले के बारे में बता रही हो! वह तो बच गया. मैं नहीं

सोचता कि ऑफिस के काम से किसी की तबीयत पर असर पड़ता हो!”

“मेरी समझ में नहीं आता कि तुम क्या कह रहे हो, कभी कुछ तो कभी कुछ. दो साल पहले आप भी तो ऑफिस के माहौल से कितने परेशान रहते थे. तबीयत खराब हो गयी थी. और आपके बॉस ही इसके कारण थे.”

“हां...मेरे बॉस मुझसे अच्छा बर्ताव कर सकते थे. लेकिन मेरी बीमारी का कारण वह नहीं था...कितने लोगों को मुझसे ज्यादा तंग करने वाले बॉस मिलते हैं. लेकिन उनकी तबीयत पर कोई बुरा असर नहीं होता. मेरे वर्तमान बॉस डॉ. नाथन बहुत अच्छे आदमी हैं.”

“तुम्हारे साथ तर्क करना व्यर्थ है. ...अब तुम्हारा माटुंगा जाने का कार्यक्रम तो गया. अब जाओ राघवन के घर.”

“तुम क्यों नहीं समझती हो. मैं माटुंगा जाऊंगा. आखिर अंतिम संस्कार में तीन-चार घंटे लगेंगे. बीच में मैं माटुंगा जाकर वापस आ जाऊंगा.

पत्नी क्रोधित हो गयी. जोर-जोर से कहना शुरू कर दिया. “कैसे आदमी हो तुम? राघवन तुम्हारा इतना अच्छा दोस्त था. ...बेचारा मर गया और तुम माटुंगा जाने की सोच रहे हो, मौज-मस्ती करने? कितने निर्दयी हो तुम? पिछले हफ्ते ही उसने सुंदर सा नये साल का कार्ड भेजा था और तुम्हारे मित्र भाटिया ने तुम्हें फोन करके शायद राघवन के परिवार के लिए कुछ मदद मांगी है.

आकाश समझ गया कि शांत रहने में ही भलाई है, नहीं तो सारा खेल बिगड़ जायेगा.

धीमे स्वर में उसने कहा, “तुम समझती क्यों नहीं कि कितने महिने हो गये मैं माटुंगा नहीं गया. पिताजी की बीमारी ने मुझे कितना व्यस्त बना दिया था? कितने दिनों के बाद आज जरा फुर्सत है मुझे.”

“मेरे बारे में भी कभी सोचा है? तुम मर्द लोग बस अपना थैला उठाया और निकल गये बाहर! हम खाना बनाकर राह देखती रहती हैं और वैसे तो आप माटुंगा से कुछ नयी और अच्छी किताबें लायेंगे नहीं. पैसा ज्यादा लगता है, कहेंगे और कोई पुरानी गंदी किताबें उठाकर लायेंगे और फिर रात में मुझे पढ़ने को कहेंगे, जो करना है करो. नाश्ता तैयार है.”

पत्नी ने उपमा बनायी थी. बहुत ही अच्छी बनी थी. अभी नाश्ता ही कर रहा था कि फोन की घंटी फिर बज उठी. फोन सोनावने का था. वह पूछ रहा था कि आकाश कब तक राघवन के



डॉ. रामशेष

२२ जून १९४२, पालमादाई गांव, तिरनेवेली (त.ना.);
दिल्ली वि.वि. से विज्ञान स्नातक,
मुंबई वि.वि. से पीएच.डी.

प्रकाशन: हिंदी में मात्र कुछ कहानियां, लघुकथाएं व कविताएं प्रकाशित. पहली लघुकथा ‘कथाबिंब’ में प्रकाशित. अंग्रेजी में विभिन्न विषयों पर लगभग ७० लेख प्रकाशित. छुटपुट विज्ञान लेखन भी.

सम्मान: भारतीय विद्या भवन द्वारा १९६६ में पत्रकारिता के छात्र के रूप में रजत पदक प्राप्त.

विशेष: १९६२ से २००२ तक भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में वैज्ञानिक अधिकारी के पद पर कार्य. इस अवधि में हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबद्ध कई समितियों में सक्रिय भूमिका.

घर पहुंचेगा.

यदि वह सीधा राघवन के घर नहीं गया तो पत्नी को अच्छा नहीं लगेगा और वह आज किसी भी स्थिति में पत्नी का मिजाज बिगाड़ना नहीं चाहता अन्यथा उसकी रात की प्लानिंग धरी की धरी रह जायेगी.

पत्नी प्रश्न पूछने की मुद्रा में खड़ी थी. आकाश ने कहा, “ठीक है...तुम्हारी ही बात मान लेता हूं. मैं सीधे राघवन के घर जाऊंगा. बाद में अवसर मिला तो माटुंगा होकर आऊंगा.”

“जैसी आपकी मर्जी हो, वैसा करना. बोटल में दूध रखा है. मैसूर कैफे में जब काफी लें तो दूध मिला लेना. स्ट्रॉन्ग काफी आपको सूट नहीं करती. वहां कुछ मत खाना. मैं आज आपकी पसंद की खाने की चीजें बनाऊंगी. खाना खाने घर आना. अब मैं पूजा करने जा रही हूं. मुझे डिस्टर्ब मत करना और अगर आने में देर हो जाये तो फोन करना. नहीं तो आपके बारे में मुझे चिंता होगी.”

इतना कहकर पत्नी पूजा करने चली गयी. आकाश आराम से तैयार हुआ. थैले में दूध की बोतल और बिस्कुट का पैकेट रख लिया. अलसर का मरीज होने के नाते दूध ले जाना आवश्यक था. पत्नी पूजा में व्यस्त हो गयी. पुरानी पोर्नोग्राफिक किताबें थैले में रख लीं. उनके बदले नयी किताबें लानी हैं, इसलिए कुछ रुपये ले लिए और राघवन के घर की ओर चल दिया.

जब आकाश राघवन के घर पहुंचा, तब उसे काफी भीड़ नज़र आयी. ऑफिस के कई कर्मचारी आये हुए थे. तीन-चार के ग्रुप में बंटे हुए वे अलग-अलग खड़े थे. आकाश, राघवन की पत्नी से मिला और उससे अपना दुःख प्रकट किया. उसके कुछ कहने के पहले ही राघवन की पत्नी फूट-फूट कर रोने लगी. आकाश ने दूसरे कमरे में बैठी 'माला' को देखा. उसने सोचा, तेरह साल की लड़की को कैसे समझ में आयेगा कि मौत क्या होती है!

आकाश बाहर आया तो देखा, सभी एक ही बात कर रहे थे कि राघवन की मृत्यु कैसे हो गयी? जिस राघवन की तबियत कल एकदम ठीक थी, उसकी अचानक इस युवावस्था में कैसे मौत हो गयी?

अनंतन बोला, "विश्वास ही नहीं होता. कल ही तो दोनों ने एक साथ ऑफिस में चाय पी थी."

"हां, तुम ठीक कह रहे हो. मुझे भी विश्वास नहीं हुआ,"

गोविंदन बीच में ही बोल पड़ा, "राघवन सब का ख्याल करता था. सबकी मदद करने के लिए हमेशा तैयार रहता था. पिछले सप्ताह मैंने उससे पैसे उधार मांगे, उसने बिना हिचक रुपये दे दिये. मुझे तो उसके बच्चों पर तरस आता है. लड़का फाइनल में है और दो-तीन पेपर अभी बाकी हैं."

"माला को भी आगे की पढ़ाई में तकलीफ होगी...वह अभी छोटी है. शायद उसकी समझ में ही नहीं आ रहा होगा." एक अच्छी बात यह है कि उसकी परीक्षा समाप्त हो गयी है. अनंतन ने कहा.

आकाश दूसरे ग्रुप की तरफ बढ़ा. यहां भी राघवन की तारीफ हो रही थी. जब भी कोई नया साथी आता, तो वह यही सवाल पूछता कि राघवन की मौत कैसे हो गयी? क्या कोई उसे अस्पताल ले गया था? क्या डॉक्टरों ने पूरी कोशिश की थी?

आकाश परिचित आवाज़ सुनकर उस कोने की तरफ चला गया जहां उसके और दोस्त बैठे थे. वहां मुकुंदन, त्रिपाठी और कुछ अन्य कर्मचारियों के बीच हार्ट-अटैक के विषय को लेकर

डिस्कशन चल रहा था.

मुकुंदन बोल रहा था, "पिछले साल मेरे साले को भी दिल का गंभीर दौरा पड़ा. लेकिन किस्मत ने उसे बचा लिया."

अब त्रिपाठी बोला, "यह तो अच्छा है कि तुम्हारा साला बच गया. हमारे पड़ोसी चंद्रन को सीने में दर्द हुआ और अस्पताल ले गये. डॉक्टरों ने कहा सब ठीक है और घर भेज दिया. लेकिन दो दिन के बाद मैसिव हार्टअटैक आ गया और पंद्रह दिनों तक अस्पताल के आईसीयू में पड़ा रहा."

"अरे....चंद्रन को दिल का दौरा पड़ा और मुझे पता भी नहीं." शिवा बोला.

त्रिपाठी ने कहा, "शिवा उस समय तुम छुट्टी लेकर गांव गये थे. इसी कारण तुम्हें पता नहीं चला."

"लेकिन मैंने तो एक ही सप्ताह छुट्टी ली थी. पर शायद इसी कारण मैं जान ही नहीं पाया," शिवा बोला.

आकाश ने देखा कि शिवा ने त्रिपाठी के कान में धीरे से कुछ कहा और वहां से चल दिया.

चंद्रन ने पूछा, "त्रिपाठी जी, शिवा कहां जा रहे हैं?"

"उसके घर पर मेहमान आने वाले हैं," त्रिपाठी ने उत्तर दिया.

"मुझे भी दादर स्टेशन जाना है. मेरा एक दोस्त उसी गाड़ी से आ रहा है."

चंद्रन ने उत्तर दिया, "वह दादर एक्सप्रेस से आ रहा है. जो करीब बारह बजे आती है. मैं ऐसा करता हूं कि उसे घर छोड़कर साढ़े बारह-एक बजे तक लौट आऊंगा."

आकाश ने अपनी घड़ी देखी. दस बजे थे. और यह अंदाज़ लगाया कि अभी यहां दो-तीन घंटे और लगेंगे. उसे कोफ्त हो रही थी. उसके सामने माटुंगा, पुस्तकों की दुकानें, गर्म काफी दिखाई देने लगी. वह कुछ बहाना बनाकर खिसकना चाहता था.

इतने में ऑफिस की गाड़ी आकर उसके सामने रुक गयी. गाड़ी में से डॉ. राम नाथन निकले. किसी ने नाथन को अंदर ले जाकर राघवन के परिवार से भेंट करायी. डॉ. नाथन ने राघवन की पत्नी को ऑफिस की ओर से शोक संदेश दिया और आश्वासन दिलाया कि ऑफिस की तरफ से वे उनकी पूरी मदद करेंगे.

नाथन ने आकाश और ललित को इशारे सेबुलाया. इशारा पाकर वे दोनों उनके निकट पहुंचे.

नाथन ने कहा, "देखो....आकाश, मुझे ऑफिस में ज़रूरी काम है. डॉ. मूर्ति से मिलना है. तुम सभी इंतज़ाम कर देना.

ट्रान्सपोर्ट सेक्शन को फोन करो, दो बसें भेजने के लिए. हां, फूल माला का इंतज़ाम करो, मुझे मेरे मोबाइल पर फोन करना जब तैयारी हो जाये. मैं कोशिश करूंगा कि डॉ. मूर्ति भी शामिल हो सकें. ललित, तुम आकाश को पूरी तरह से मदद करो.” और बिना उत्तर सुने कार में बैठकर वे चल दिये.

आकाश उदास हो गया. हमेशा नाथन ऐसा ही करते हैं. ऑफिस थोड़े ही जायेंगे? बहुत संभव है चेंबूर में आराम से खरीददारी करेंगे! इसलिए ही तो उन्होंने आकाश को अपने मोबाइल पर फोन करने को कहा. आकाश मन ही मन बड़बड़ाता रहा. उसे लगने लगा कि अब माटुंगा का प्रोग्राम उसे स्थगित ही कर देना पड़ेगा. किसी तरह आकाश इस माहौल से शीघ्र भागना चाहता था. लेकिन वह परिस्थितियों से पूरी तरह घिर गया था. आकाश ने देखा कि उसके सभी साथी कुछ न कुछ बहाना बनाकर खिसक रहे हैं.

“क्या राहुल कॉलेज से आ गया?” कोई पूछ रहा था.

“नहीं. लगता है दादर में रस्ता रोको अभियान में वह फंस गया है, ऐसी जानकारी मिली है. इसलिए उसको यहां पहुंचने में एक और घंटा लगेगा.” गोविंदन उत्तर दे रहा था.

“क्या किसी ने उसे जल्दी आने की खबर नहीं की?”

रामप्रसाद पूछ रहा था.

गोविंदन ने जबाब दिया, “मुझे पता नहीं कब राहुल को यह खबर मिली. मैंने अभी फोन किया था. प्रिन्सिपल बोले, वह निकल चुका है, लेकिन दादर में रस्ता रोको अभियान चल रहा है.”

इसी बीच राघवन के पड़ोसी ने कहा कि जो लोग उसके घर में आराम करना चाहें, आराम कर सकते हैं. इस पर किसी ने कहा कि विश्राम की ज़रूरत नहीं है, हां अगर पानी का एक मटका बाहर रखवा दें, तो अच्छा होगा. गर्मी के मारे सब को प्यास लग रही है.

इतने में राघवन का एक रिश्तेदार आकाश से कहने लगा कि अंतिम संस्कार के लिए उन्होंने एक पंडित को फोन किया पर वह पंडित ठीक से बात नहीं कर रहा है.

आकाश ललित की तरफ बढ़ने ही लगा था कि उसके पहले ललित ही उसकी तरफ आया. ललित बोलने लगा, “देखो आकाश, मुझे अपनी मां को अस्पताल ले जाना है. मैं एक घंटे में वापस आ जाऊंगा. तुम नारांग या भाटिया को साथ लेकर जाना. जब तक पंडित न आ जाये तब तक मैं बाकी चीजों का ख्याल रखूंगा.” कहते ही ललित खिसक गया. उसकी आदत आकाश

जानता था.

आकाश का गुस्सा सर पर चढ़ चुका था. लेकिन उसने अपने आपको संभाला.

भाटिया ने कहा, “आकाश, तुम चिंता मत करो, ललित को अपनी मां को ले जाने दो. मैं तुम्हें लेकर चलता हूं पंडित के पास.” बोलते-बोलते भाटिया ने अपना स्कूटर लिया. आकाश को दांये से बैठने के लिए कहा.

“क्या तुम ठीक तरह बैठ गये?” आकाश ने ‘हां’ में उत्तर दिया. दरअसल मैं पीछे बैठने में बहुत असुविधा महसूस कर रहा था. लेकिन इस समय अपनी असुविधा सोचना ठीक नहीं. भाटिया ने स्कूटर स्टार्ट किया.

“देखो आकाश.....मुझे पंडित का घर का रास्ता मालूम नहीं है. डायमंड गार्डन आने के बाद तुम रास्ता ठीक से बताना.” भाटिया ने कहा.

देवनार बस डिपो के सिग्नल पर स्कूटर को रोकना पड़ा, दोनों में बातचीत हुई. “आकाश, कितनी देर लगेगी शव को ले जाने में. आखिर तुम भी तमिलियन हो और अपने रिवाजों के बारे में तुम्हें पता होगा.” भाटिया ने कहा.

आकाश ने कहा, “यह तो पंडित के ऊपर है. लेकिन हर हाल में दो-तीन घंटे तो लग ही जायेंगे.

“दरअसल मेरा चेंबूर में काम था. इसलिए मैंने सोचा आपको चेंबूर तक छोड़कर अपना काम होते ही मैं वापस आ जाऊंगा.”

“मुझे भी माटुंगा जाना था.” आकाश ने कहा.

“तो ऐसा करते हैं कि पंडित से मिलने के बाद तुम माटुंगा हो आना और चेंबूर में अपना काम करके मैं वापस आ जाऊंगा, तुम्हारे आने तक मैं संभाल लूंगा.”

आकाश जान गया कि, भाटिया अपने काम करने आया है. और शायद कुछ बहाने बनाकर अंतिम संस्कार में भाग नहीं लेना चाहता है. उसने माटुंगा जाने का प्रोग्राम छोड़ दिया. किताबों को देखने और फिर छांटने में समय लगेगा. लेकिन वह भाटिया को जाने नहीं देगा.

थोड़ी देर में ट्रैफिक सिग्नल हरा हो गया और भाटिया ने स्कूटर स्टार्ट किया.

भाटिया ने पूछा, “आकाश आप राघवन को कब से जानते हैं?”

“लगभग बीस सालों से, वह दूसरे प्रभाग में काम करता

था. हम दोनों अक्सर मीटिंगों में मिला करते थे. हां, तुम चेंबूर जाओ लेकिन शीघ्र लौटना. मैं माटुंगा शाम को जाऊंगा. तुम पंडित से मिलने के बाद मुझे बस स्टॉप पर छोड़ दो. मैं खुद राघवन के घर पहुंच जाऊंगा.” आकाश ने उत्तर दिया.

आकाश ने भाटिया को रास्ता दिखाया. पंडित का घर जिस गली में था वहां स्कूटर चलाना काफी मुश्किल था. आखिर वे पंडित के घर पहुंचे. दरवाजा खटखटाया तो पंडित बाहर निकला. उसने अपना और भाटिया का परिचय दिया.

पंडित ने कहा, “हां, मुझे अणुशक्ति नगर से टेलीफोन आया लेकिन मैं बिल्डिंग का नाम नहीं समझ पाया. बड़े अफसोस की बात है कि इतने प्रतिभाशाली वैज्ञानिक छोटी उम्र में हार्ट-अटैक से पीड़ित होते हैं और बच नहीं पाते!”

आकाश को पंडित की चतुराई पर आश्चर्य हुआ. पंडित ने प्रतिभाशाली शब्द का इस्तेमाल किया. शायद यह दिखावा है और ज्यादा पैसे लेने का उपाय है.

थोड़ी देर के बाद पंडित ने कहा, “देखो तुम बुरा मत मानना... अंतिम संस्कार के लिए मैं हजार रुपये लेता हूं. देखो भाई, मैं साफ-साफ बोलता हूं. इसी तरह पिछले माह किसी का अंतिम संस्कार कराया. कार्य के बाद वे झगड़ने लगे.”

आकाश ने तुरंत जवाब दिया. “हम आपकी मुसीबत समझते हैं. लेकिन चिंता ना करें आप एक घंटे में पहुंच जाना.”

आकाश को मालूम था कि पंडित लोग अंतिम संस्कार कार्य में ज्यादा पैसा वसूल करते हैं. उसके पिताजी की मौत हुई तब उसे पूरे पंद्रह हजार रुपये खर्च करने पड़े.

दोनों पंडित के घर से बाहर आये. भाटिया ने आकाश को चेंबूर नाका के बस स्टैंड पर छोड़ दिया. आकाश ने सामने हॉटेल देखा और एक प्याली चाय पी. पास ही बैठे अखबार बेचने वाले से दो-तीन पत्रिकाएं लीं और अपने थैले के हवाले कर लीं.

जब आकाश राघवन के घर पहुंचा, सुबह के ग्यारह बज गये थे और लोग गर्मी महसूस कर रहे थे. बाहर पानी का घड़ा रखवा दिया गया था प्यास लगने पर लोग उसका इस्तेमाल कर ले रहे थे.

लोगों के बीच बातचीत कम हो गयी थी. बीच-बीच में कुछ स्वर उभरते और खामोशी छा जाती. राघवन के परिवार के और लोग भी आ चुके थे. एक व्यक्ति आकाश के पास आया और उसने अपना परिचय दिया और बोला कि वह राघवन का साला है. उसने आकाश से कहा कि अंतिम संस्कार की तैयारी पूरी हो चुकी

है और आंधे-पौन घंटे में सब को ले जा सकते हैं.

तभी आकाश को याद आया कि फूलमाला लानी थी. उसने कोने में खड़े त्रिपाठी को देखा.

“त्रिपाठी जी आप कैसे हैं?” आकाश ने पूछा.

“नमस्कार, आकाश जी पता नहीं कितना वक़्त लगेगा. इसलिए मैं कुछ किताबें लाया हूं ताकि पढ़ सकूं.”

“आपने ठीक किया. मुझे भी कुछ मैगजीन लाना था.”

“घबराइए नहीं. मेरे पास कुछ हिंदी पत्रिकाएं भी हैं. आप देखना चाहें तो मुझसे ले लें.”

“हां, मैं देख सकता हूं लेकिन अब मुझे भागदौड़ करना है. अंतिम संस्कार की तैयारी को डॉ. नाथन ने मेरे सिर पर डाल दिया है.”

“ऐसे काम आप ही ज़िम्मेदारी से कर सकते हैं, मैं आप के साथ हूं. चाहे तो आपका बोझ हल्का कर सकता हूं.”

“बहुत खुशी हुई आपकी यह बात सुनकर. दो-तीन मित्रों से पैसे ले लो... दो फूल माला खरीदना है.”

“मैं यह काम अवश्य करता लेकिन मेरे पैर में दर्द है और ज्यादा देर नहीं खड़ा रह सकता.”

आकाश को मालूम था कि त्रिपाठी कामचोर है और बहाना बनायेगा. वह सोनावने के पास आया और दो सौ रुपये इकट्ठे करने को कहा.

अब तक राहुल पहुंच गया. रिश्तेदार उसे पिताजी के शव के पास ले गये. वह फूट-फूट कर रोने लगा. इसी बीच कोई उससे गर्म काफी पीने का आग्रह कर रहा था.

जब आकाश बाहर आया तो देखा कि पंडित जी पहुंच चुके थे. सफेद धोती पहने, हाथ में एक थैली लेकर आये थे. आकाश से उसने पानी मांगा. मुकुंदन ने पानी का एक लोटा पंडित को दिया. पंडित ने अपनी थैली से दवा की दो गोलियां निकालीं, मुंह में डालीं और पानी पिया.

पंडित ने कहा, “मुझे एसिडिटी की बीमारी है.” मुकुंदन ने उत्तर दिया, “एसिडिटी के लिए, आपको दूध लेना चाहिए, क्या दूध ला दूं?”

“नहीं... दूध मुझे अच्छा नहीं लगता है... कभी-कभी तीन चार बिस्कुट खा लेता हूं. खैर यह रेनिटिडीन की दवाई से मेरी एसिडिटी कम हो जाती है. अच्छा मैंने जो बताया था सब सामान ले आये हैं?”

पंडित को उस कमरे में ले जाया गया जहां राघवन का शव

रखा हुआ था. राहुल को पास बैठने को कहा. शव को पहले नहलाया गया फिर एक नयी धोती पहनायी गयी. अंत में उसे बांसों से बनी अर्धी पर लिटाया और चारों ओर से रस्सी से बांधा गया.

डॉ. नाथन और डा. मूर्ति ठीक समय पर पहुंचे. डॉ. मूर्ति ने पूछा कि राघवन की मौत कैसे हुई? सोनावने ने पूरी घटना सुनाई. चार पांच लोग डॉ. मूर्ति को घेरे हुए थे और चाहते थे कि कुछ मौका मिले तब वे भी मूर्ति से कुछ बात कहें.

डॉ. नाथन ने पूछा, “आकाश तैयारी ठीक की है ना. मुझे ललित नजर नहीं आ रहा है.”

“नहीं सर, ललित मुझे मदद कर रहा है. इधर किधर ही होगा.”

□

यह तय हो गया कि राहुल, उसके चाचा और आकाश शव के साथ जायेंगे. बाकी लोग बस में बैठ गये. जब शमशान घाट पहुंचे तो अशोक ने देखा कि शिवा पहले ही मौजूद था. उसने शिवा से पूछा, “क्या तुमने डेथ सर्टीफिकेट दिया?”

शिवा ने उत्तर दिया, “हां, डेथ-सर्टीफिकेट दे दिया और उसकी चार-पांच प्रतियां बनवा लीं. शमशान घाट के अधिकारी को पांच सौ रुपये मैंने दिये हैं. बाद में हिसाब कर लेंगे. मैं घर इसीलिए गया था कि कुछ पैसे लाऊं.”

“चलो, तुमने बहुत अच्छा काम किया.”

अंतिम संस्कार से पहले की प्रक्रिया शुरू हो गयी, शव को ज़मीन पर रख दिया गया. नाथन और मूर्ति ने ऑफिस की तरफ से हार चढ़ाकर वंदना की. पंडित ने राहुल को शव से थोड़ी दूर बैठने के लिए कहा.

पंडित ने एक अग्निकुंड बनाया और मंत्र पढ़ने लगा. राहुल से कहा कि वह भी साथ ही साथ मंत्र पढ़े. पंडित मंत्र का अर्थ और क्रिया के बारे में सबको जानकारी देता जा रहा था. उसने कहा कि मृतक की आत्मा स्वर्ग की ओर जा रही है और वहां शांति से रहेगी.

पंडित समय-समय पर अग्निकुंड में घी डाल रहे थे और साथ ही साथ मंत्रोच्चार कर रहे थे. अंत में राहुल को शव के तीन चक्कर लगाने को कहा. मृत शरीर को विदा करने की तैयारी शुरू की गयी. राहुल ने चिता जलायी.

आकाश मन में सोचने लगा. ऐसे ही एक दिन मैं मर जाऊंगा. मेरी बेटी रोयेगी. बेटा शायद ही कुछ समझ पायेगा? ज़िंदगी ऐसी

ही चलती रहेगी. जन्म के बाद मौत!

जब चिता पूरी जल गयी तो सब जाने लगे. श्रीराम ने थोड़े पैसे शमशान के कर्मचारियों को दिये. वे सारे झगड़ने लगे.

“इतने थोड़े पैसे...हमारे भी बाल बच्चे हैं. दिन रात हम शव को जलाते रहते हैं,” शमशान का एक कर्मचारी बोलने लगा. वहां एक अजीब खामोशी सी छा गयी. आकाश ने सौ रुपये का एक नोट पकड़ाया.

“हमें ज़्यादा पैसा नहीं चाहिए. लीजिए हम पचास रुपये वापिस करते हैं.”

जब सब लोग शमशान घाट के बाहर आये. राहुल और राघवन के चाचा हाथ जोड़े खड़े थे. अपना आभार प्रकट कर रहे थे.

नायक स्कूटर लेकर आया. आकाश को घर छोड़ने चला गया. जब घर लौटा तो आकाश ने देखा कि उसकी पत्नी ने एक बाल्टी पानी बाहर रखा था. उसने पांच साफ़ किये और वह जैसे ही आगे आने लगा, पत्नी ने पूछा, “ऑफिस के सारे लोग आये थे क्या?”

आकाश ने उत्तर दिया, “सब लोग आये. सिर्फ़ दास नहीं आया था. शायद ज़रूरी काम से वह बंबई से बाहर गया होगा.”

“यह कैसे हो सकता है. कल ही मुझे मिसेस दास मिली थीं.”

“शायद सबेरे ही वह बाहर घूमने गये होंगे और उनको खबर नहीं मिली होगी. हां. एक बात बताना भूल गया. डॉ. नाथन ने मुझ पर सारी ज़िम्मेदारी छोड़ी थी.”

“यह तुमने अच्छा काम किया...ऐसे समय तो मदद करना ही चाहिए.”

“गरम पानी तैयार है. स्नान करो, फिर हम खाना खायेंगे.”

आकाश ने अनुमान लगाया कि आज पत्नी उससे बहुत खुश है. नहाकर बाहर आया और पत्नी के साथ खाना खाया. खाने के बाद पलंग पर आ लेटा. रात के सपने देखने लगा. दिन तो गया, माटुंगा का प्रोग्राम गया लेकिन रात तो बाकी है. वह मुस्कराया और आनंद से खरटि लेने लगा.

बी एच-२/४३ केंद्रीय विहार,

सेक्टर-११, खारघर, नवी मुंबई-४१० २१०.

फोन-२७७४०७६०

रोशनीवाला

लखनऊ के हज़रतगंज इलाक़े में एक गेस्ट हाउस में बारात सज रही थी। बच्चे, बूढ़े और जवान-सभी अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक सज-धज रहे थे। कोई नया सूट निकाल रहा था, तो कोई ड्राईक्लीन किया हुआ। किसी की टाई की नॉट खुल गयी थी, या कहिए, किसी ने शरारत में खोल दी थी और वह उसे बांधने में लगा हुआ था। नवविवाहित स्त्रियां तय नहीं कर पा रही थीं कि वे साड़ी पहनें या सूट! प्रौढ़ाएं अवश्य इस समस्या से उबर चुकी थीं, लेकिन वे अपनी साड़ियां बार-बार ठीक करने में लगी थीं..... 'सोनी ब्रास बैंड' के कलाकार तो दुकान से ही सज कर निकले थे। कुछ लोग ज़रूर सजे-धजे नहीं थे। वे थे - इस सज-धज को रोशन करने वाले सिर पर रोशनी के हंडे उठाये मजदूर!

ऐसे ही मजदूरों में इंटर तक शिक्षित एक नौजवान था - कन्हैयालाल विश्वकर्मा। लखनऊ से सटे गांव के गरीब बाप का बेटा। उसने जब साइंस साइड से इंटर पास किया, तो उसकी मां ने अपने ज़ेवर गिरवी रखकर इंजीनियरिंग की कोचिंग करायी, लेकिन उसे यह न मालूम था कि सेकंड डिवीज़न पास वालों के लिए सरकारी कॉलेजों में इंजीनियरिंग का मौका न के बराबर होता है। उनके लिए तो बी.बी.डी., रामस्वरूप जैसे कॉलेज हैं जिनमें लाखों रुपये खर्च कर वे इंजीनियर बन सकते हैं बशर्ते वे अमीर बाप के बेटे हों। किस्मत आजमाने की बात थी, पर मां-बाप की हिम्मत और बेटे की मेहनत रंग नहीं दिखा पायी। सयानों की बात ही सच साबित हुई। चार महीने का वक़्त और सात-आठ हज़ार रुपयों की चपत! गांव के कुछ लोगों को छोड़ किसी को खुशी नहीं हुई। कन्हैया का गला रुंध गया। उसने अगले साल पूरी मेहनत से तैयारी का भरोसा दिलाया, पर घर की हालत देखते यही तय पाया गया कि अब वह अपने पुश्तैनी काम, अर्थात् बढ़ईगीरी संभाले और बाप का हाथ बंटायें, लेकिन कन्हैया को बसूला, आरी और रंदा से उतनी ही चिढ़ थी, जितनी कि बचपन में उसके बाप को कागज़ कलम और दवात से।

कन्हैया को उम्मीद थी कि उसे कोई छोटी-मोटी नौकरी मिल जायगी - सरकारी न सही, प्राइवेट ही। इसलिए जब बाप ने

बिना काम-धाम के खाना-पीना हराम कर दिया और मां ने भी पुश्तैनी धंधे के अपनाने की बात भी मन से की, तो वह घर से भाग निकला और कानपुर में अपने मामा के पास पहुंचा। वे एक प्राइवेट फ़र्म में चपरासी थे। वहां रहकर वह लिखने-पढ़ने वाली किसी नौकरी के लिए हाथ-पांव मारने लगा, मगर नतीज़ा ज़ीरो बटा सन्नटा ही रहा। पंद्रह-बीस दिनों बाद जब मामा ने भी समझाया कि लखनऊ में ही रहकर नौकरी का जुगाड़ करना ठीक रहेगा, तब कन्हैया की समझ में आया कि मामाजी भी उसका साथ नहीं देना चाहते। वह लखनऊ आने को तैयार हो गया।

॥ राजेंद्र वर्मा ॥

इससे पहले कि वह लखनऊ वापस आ पाता कि दुर्भाग्य ने दुर्दिन दिखला दिया। हुआ यह कि एक शाम जब उसके पिता शहर में काम खत्म कर साइकिल से घर लौट रहे थे, एक अनियंत्रित कार की चपेट में आ गये। सिर पर गंभीर चोटें आयीं। राह चलते लोगों ने किसी तरह मेडिकल कॉलेज पहुंचाया, लेकिन सुबह तक उन्हें होश न आया। एकसीडेंट की खबर जब घर पहुंची, तब तक वे स्वर्गवासी हो चुके थे। कन्हैया के लखनऊ, पहुंचने तक लाश पोस्टमार्टम होकर भैंसाकुंड पहुंच रही थी। वह सीधे घाट पर ही पहुंचा था।

नौकरी की कोई बात नहीं बन रही थी। घर की हालत खस्ता थी। कन्हैया के सामने अब कोई विकल्प नहीं था कि वह खाली बैठे। दसवां-तेहरवीं में भी जो खर्च आया था, वह मामा ने ज़रूर उठाया, लेकिन एक तरह से वह कर्ज़ ही था। दान-दक्षिणा कर उसे आत्मसंतोष कम, ग्लानि अधिक महसूस हो रही थी। इंजीनियर बनने के सपने को तोड़ वह बढ़ई बनने को तैयार था, पर उसे काम भी नहीं मिल रहा था। एकाध बार मिला भी, पर वह उसकी अनुभवहीनता के चलते छिन गया। पेट की आग और मां की बीमारी ने उसे बढ़ई से मजदूर बने पर विवश कर दिया।

दो साल पहले उसका विवाह हो चुका था। पत्नी काला अक्षर भैंस बराबर! बीमार मां की सेवा के लिए वह विवाह करने

को राजी हो गया था. मां की तरह उसे भी उम्मीद थी कि शायद बहू के भाग्य से ही उसे कोई नौकरी मिल ही जाय, पर भाग्य की बातें तो भाग्य लिखने वाला ही जाने. समय बीता.आज वह एक बच्ची का बाप है, मगर नौकरी के मामले में जहां-का-तहां, मजदूर-का-मजदूर! कभी-कभी वह सोचता है कि जब उस जैसे लोगों को सपने देखने का अधिकार नहीं है, तो फिर शिक्षा उसे सपने देखने को क्यों विवश करती है? उससे तो उसकी पत्नी ही अच्छी कि जिसे सामाजिक और सरकारी व्यवस्था से कोई शिकायत नहीं है, अगर कुछ है भी तो बस उसे अपनी क्रिस्मत से जो भगवान आदमी के कर्मों की स्याही से लिखता है. अब अगर क्रिस्मत में ही खोत है, तो भला दुनिया वालों को दोष देने से क्या फायदा!...

□

वैसे तो उसने अब तक कई बारातों में रोशनी के हंडे उठाये थे, लेकिन आज जब बैडवाली गाड़ी पर 'अजय वेड्स आभा' का बोर्ड देखा तो वह कुछ चौंक-सा गया. उसे अपने क्लास फेलो की याद आ गयी जो उससे एक साल आगे था, मगर वह फेल होकर कन्हैया के साथ दसवीं में था. अजय पढ़ने में औसत था, जबकि कन्हैया अच्छा! जूनियर हाईस्कूल और हाईस्कूल, दोनों में उसकी फ़र्स्ट डिवीजन थी. फ़र्स्टइयर में बस दो मार्क्स से फ़र्स्ट डिवीजन रह गयी थी, लेकिन इंटर में तो वह जैसे खुद से ही पिछड़ गया था. जैसे-तैसे सेकंड डिवीजन, जिसका उसे आज तक मलाल है, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि वह अजय से कमतर है. अजय बाबू तो बमशुक्ल इंटर में पास हुए थे - मैथ्स में ग्रेस मार्क्स! पर इससे क्या होता है? वह सचिवालय में कार्यरत पी.ए.का बेटा है. ग्रेजुएशन करा कर एल.डी.सी. भरती करा दिया गया और तीन ही साल में यू.डी.सी.! आज बढ़िया शादी हो रही है. जब तक बच्चे होंगे, श्रीमान सेक्शन ऑफिसर हो जायेंगे. फिर उनके बच्चे बड़े होकर अभिजात कहलायेंगे क्योंकि तब तक वे मध्यमवर्गीय हो चुके होंगे. और कन्हैया जैसे लोग मजदूर से बहुत से बहुत मेट या छोटे ठेकेदार जिनकी कोई सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं, बस खा-कमा लो और अपने बच्चों को लगाओ किसी छोटे-मोटे काम-धंधे में, वरना वे भी मजदूर! बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए पैसा और मां-बाप को शिक्षित और सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित होना चाहिए.

कन्हैया को अपने आप पर तरस भी आ रहा था और गुस्सा भी. उसने पहली ही बार पूरी ताकत क्यों नहीं लगायी? गरीबों को एक ही बार अवसर मिलता है. अगर उसने पूरी ताकत लगायी



(Handwritten signature)

१६ मार्च १९५५, सधई पुरवा (धमसड़), बाराबंकी (उ.प्र.)

- कृतियां :** दो गीत संग्रह तथा दोहा, गज़ल, हाइकु, लघुकथा एवं व्यंग्य निबंध में एक-एक संग्रह. कहानी, निबंध तथा एक काव्य संग्रह शीघ्र प्रकाश्य.
- संपादन :** दो गीत-नवगीत संकलन तथा अनियत कालीन पत्रिका 'अविरल मंथन'.
- विशेष :** देश की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी से रचनाएं एवं समीक्षाएं प्रसारित.
- अन्य :** कई महत्वपूर्ण संकलनों में सम्मिलित. कवि-सम्मेलनों, गोष्ठियों, सेमीनारों में भागीदारी.
- मूल्यांकन :** एक व्यंग्य संग्रह पर उ.प्र. हिंदी संस्थान का नामित पुरस्कार (१९९९); 'राजेंद्र वर्मा की साहित्य साधना' विषय पर लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा शोध (२००५); कई शोध ग्रंथों में संदर्भित; कई गज़लें तथा लघुकथाएं पंजाबी में अनूदित; अनेक महत्वपूर्ण संस्थाओं द्वारा सम्मानित.
- संप्रति :** भारतीय स्टेट बैंक, लखनऊ में प्रबंधक.

होती तो किसी सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेज में एडमीशन हो जाता! एक बार एडमीशन हो जाता, तो वह एजुकेशन लोन ले लेता. मामा गारंटर तो बन ही जाते! लेकिन अब क्या हो सकता है?

सिर पर रोशनी का हंडा लादे कन्हैया तसल्ली कर लेना चाहता है कि दूल्हा अजय ही है, लेकिन दूल्हे की गाड़ी उससे

बीस-पचीस फ्रीट पीछे है. रोशनी के स्टैंड को हाथों से पूरी ताकत लगा वह मुड़कर देखता है, लेकिन कोशिश बेकार! उल्टे डांट पड़ती है कि सीधे देखे वरना दूसरे मजदूरों की बत्तियां उलट जायेंगी. कहने को तो वह अनस्किल्ड लेबरर है, लेकिन बिना स्किल के दो वक्त्र की रोटी नसीब है क्या?

दारू चढ़ाये सूटेड-बूटेड बाराती कूल्हे मटका रहे हैं- 'भरे यार की शादी है!....लगता है जैसे सारे संसार की शादी है!!' या फिर, 'यह देश है वीर जवानों का, मस्तानों का अलबेलों का!' कन्हैया झल्लाता है - अगर ये दो फ़िल्मी गाने न देश को मिले होते, तो न जाने क्या होता? कैसे बाराती नाचना शुरू कर पाते? ...कन्हैया को आज कुछ अच्छा नहीं लग रहा है - न गाना, न संगीत और न डांस! लगता है जैसे उसके तन-बदन में जैसे सैकड़ों खटमल चिपक गये हों, लेकिन वह अपने हाथों का इस्तेमाल सिर्फ़ रोशनी का हंडा संभालने में ही कर सकता है, खटमलों को हटाने या मारने में नहीं.

कोई एक घंटे के फूहड़ डांस के सफलतापूर्वक संपन्न होने के बाद बारात मंडप के द्वार तक पहुंची. दूल्हे के कार से उतरने तक इंतज़ार करना कन्हैया को खल रहा था. डर था कि जब तक दूल्हे महाराज कार से उतरें तब तक कहीं उसे पीछे लौटने के लिए न कह दिया जाये, क्योंकि उस समय रोशनी वाले मजदूरों को इस ढंग से वापस आना होता है कि केवल बैंड पार्टी ही वहां रह जाये ताकि दूल्हे के यार-दोस्त भाई-वाई, बचा-खुचा डांस प्रोग्राम पूरा कर सकें और उन पर न्यौछावर किये गये करारे नोटों को बैंड मास्टर लूट सके ! उसमें मजदूरों का कोई हिस्सा नहीं होता.

और वही हुआ जिसकी आशंका थी. कन्हैया दूल्हा नहीं देख सका. बैंड मास्टर ने मजदूरों को पीछे लौटने के लिए कह दिया था. पता नहीं कन्हैया क्यों तेज़ क्रदमों से लौटने लगा. उसकी इस तेज़ी से दूसरे मजदूरों की बत्तियां गड़बड़ाने लगीं. दो तो उलट भी गयीं. कन्हैया को गालियां और नसीहतें मिलने लगीं. पैसे कटने का भी डर था, मगर अब क्या हो सकता था? नुकसान तो भरना ही पड़ता है. मजदूरों की गलती का भी कहीं इन्श्योरेंस होता है? गनीमत थी, टूटी नहीं.

बत्तियां रखकर कन्हैया जब तक वापस शादी के मंडप पर पहुंचा, तो द्वार पर एक-दो चौकीदारों के अलावा कोई न था. बिना प्रेस की पैंट और गंदी सी कमीज़ पर हाफ़ स्वेटर पहने वह अंदर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था. कोई टोक दे तो? अभी चौकीदार ही रोक सकता है. स्वयं को मन के दर्पण में देखा -

उतरा हुआ चेहरा, रूखे-बिखरे बाल, गले में मुड़ा-तुड़ा मफ़लर, गंदे कपड़े और धूल भरे पैरों में प्लास्टिक की चप्पलें - कहीं से बाराती नहीं! हां, जनाती हो सकता है क्योंकि जनातियों की वेशभूषा उनकी विनम्रता होती है, कपड़े-जूते नहीं.....

उसे अपनी बारात की याद हो आयी जिसमें ज़्यादातर मजदूर क्रिस्म के लोग! बमुश्किल पंद्रह-बीस लोग नये कपड़े पहने होंगे, बाक़ी सबके सब वही रोज़ के कपड़े. हां, धुले और प्रेस कराये. पैरों में बस जैसे-तैसे जूते-चप्पल. छोटे लड़कों के पास ज़रूर अच्छे कपड़े थे. लेकिन सभी बाराती प्रेम और उत्साह से भरे! और अजय की बारात में एक-से एक शानदार कपड़े पहने लोग, फिर भी चेहरों पर कोई रौनक नहीं. लगता है, वेशभूषा के कंपटीशन में शामिल हुए और फ़ेल हो गये. केवल औपचारिक भीड़! हुंह, यह भी कोई बारात है. शाम को आठ बजे इकट्ठे हुए, एक घंटे में नाश्ता पानी हो गया फिर एक घंटे में बारात चढ़ी, नाच-गाना - वह भी ख़ुद ही, और पहुंच गये वधू को माला पहनाने! खाना-पानी हुआ और ग्यारह बजते न बजते हो गयी उठ गयी बारात! वर और वधू यदि स्थानीय हुए, तो सबेरे आठ बजे तक केवल घर के ही चार-छः लोग बचते हैं. जब ऐसा ही करना है तो क्या ज़रूरत है बारात-वारात करने की? अरे कोर्ट में जाइए और शादी का रजिस्ट्रेशन कराइए और शाम को अपने घर पर दावत दे दीजिए, ताकि लोग जान लें कि शादी हो गयी.....क्या ज़रूरत है ढोंग और फ़िज़ूलखर्ची की? बारात तो वह होती है कि लड़के के घर पर लोग बाग़ दिन में आयें, मिले-जुलें, साथ बैठे-उठें, फिर एक साथ किसी साधन से जनवासे में पहुंचें और फिर बारात चढ़े. उसमें जिसका मन हो नाचे-गाये, लेकिन कम-से-कम सब लोग रात-भर साथ रहें, साथ खाये-पियें. नाच-गाना, नाटक-नौटंकी आदि कुछ मनोरंजन हो, फिर सबेरे बहू विदा कराकर सब लोग साथ-साथ लौटें!....पर, ये सब बीते ज़माने की बातें हैं. अब किसे फुरसत है इतना समय देने की. अब तो लोग थोड़ा सा वक्त्र निकाल कर इसलिए आते हैं ताकि उनकी ज़रूरत पर दूसरे आ सकें.....

बारात-विश्लेषण में वह इतना खो गया कि उसे यह भी याद नहीं रहा कि उसे अभी क्या करना है? अब उसे याद आया कि उसे दूल्हे को देखना है. वह यदि अजय हुआ तो उसे बधाई देनी है और यह भी देखना है कि अजय उसे पहचान पाता है या नहीं, या पहचानकर भी न पहचानने का अभिनय करता है! उसे अब तक ऐसे तमाम अभिनय देखने का काफ़ी अनुभव हो चुका था. वह

सोच में पड़ गया, यदि अजय उसे न पहचान पाये या फिर न ही पहचाने तो? वह उधेड़बुन में था कि अंदर जाये या नहीं, पंद्रह-बीस क्रम पर खड़े चौकीदारों में से एक ने डपट कर पूछा - कौन है बे? कहां घुसा जा रहा है? वह ठिठक कर चौकीदार के पास आने की प्रतीक्षा करने लगा. जब चौकीदार पास आ गया तो वह बहुत धीमे स्वर में बोला - अगर आप इजाज़त दें तो मैं अजय जी से मिलना चाहता हूँ. मैं उनका क्लासफ़ेलो हूँ. पहले तो चौकीदार ने समझा कि कोई उचक्या या मुफ़्तखोर होगा जो खाने-वाने की फिराक में है, पर उसकी विनम्रता और भोलेपन पर दया दिखाते हुए उसे इस चेतावनी के साथ जाने दिया कि अगर कुछ भी गड़बड़ हुई तो फिर पुलिस की पिटाई की शिकायत मत करना - तुम्हारे ताऊ दारोगाजी अंदर ही हैं. वास्तव में चौकीदार ने समझा था कि वह किसी जनाती से मिलना चाहता है. अजय के माने अगर वह दूल्हे राजा समझता, तो शायद ही जाने देता! बहरहाल, उसे इंटी मिल गयी....

अंदर की सजावट देखते ही बनती थी. खुले लान को तीन हिस्सों में बांट कर पंडाल सजाया गया था. एक ओर नाश्ते का सामान, दूसरी ओर खाना और तीसरी ओर वरमाला के कार्यक्रम हेतु विशेष सजावट. वरमाला के लिए सजे पंडाल के सामने करीब दो सौ कुर्सियां पड़ी हुई थीं, पर उन पर केवल औरतों का क़ब्ज़ा था. बच्चों की टोलियां तो भालू बने गुब्बारे के आगे पीछे ही घूम रही थीं...पंद्रह-बीस प्लास्टिक की गोल मेजें और उनके किनारे-किनारे पांच-छः प्लास्टिक की रंगीन कुर्सियां पड़ी हुई थीं. उन पर गोलबंदी किये हुए लोग जैसे राजनीति करने के लिए प्रदान किये गये अवसर का पूरा लाभ उठा लेना चाहते हों. नवयुवक और नवयुवतियां अपने शरीर को सौंदर्य का प्रतीक बनाये हुए एक-दूसरे पर रौब जमा रहे थे. कुछेक कानफोडू संगीत पर कुछ ऐसे डान्स कर रहे थे जैसे उन्हें डी.जे.नाइट की रिहर्सल आज ही कर लेनी हो. यह ऐसा समाज था जो कन्हैया को फूटी आंख नहीं सुहा रहा था - बेकार की शानशौकत पर रीझते हुए लोग, उनका चरित्र, उनका दर्शन, उनका संस्कार, उनका धन! सब कुछ दो कौड़ी का !

बारातियों का नाश्ता चल रहा था. नाश्ते में एक-से-एक आइटम - फलों की चाट, अंकुरित बीज, आलू की टिक्की, मटर, पानी के बताशे, चाउमीन, दोसा, इडली, ढोकला, पनीर पकौड़े, मिठाइयां, हलुवा, आइसक्रीम, चाय-कॉफी, कोल्ड ड्रिंक, रियल जूस.... मुंह में पानी आ रहा था, लेकिन कन्हैया की निगाहें दूल्हे महाराज को खोज रही थीं, जो द्वारचार की रस्म समाप्त कर अपने

खास दोस्तों और साले साहब के साथ पंडाल से सटे कमरे में नाश्ता कर रहा था. कन्हैया कभी इधर जाता, कभी उधर, पर जिसे वह खोज रहा था, वह उसकी निगाह से बाहर था. एकाध लोग उसके जाने-पहचाने लगे, लेकिन वह उनके ठाट-बाट को देख उनसे जान-पहचान करने की हिम्मत नहीं जुटा पाया. गनीमत यह थी कि अब तक उसे टोका नहीं गया. उसने वेटर से अजय के बारे में पूछा, तो बड़ी मुश्किल से पता लगा.

वह दूल्हे के कमरे में घुसने की हिम्मत नहीं जुटा पाया. सोचा, जब बाहर आयेंगे, तो मिल लेंगे, बधाई दे देंगे.वह कमरे के बाहर एक किनारे ज़मीन पर बैठ गया. भूख-प्यास तो लगी थी, लेकिन जब तक कोई कहे नहीं, वह कैसे खा सकता है? पर उससे कहे कौन? किसी ने उसे बुलाया तो था नहीं. वह अपने आप पर मुस्कुरा उठता है.उसका मन हुआ कि एक टिक्की खाकर एक गिलास पानी और एक चाय पी ले, लेकिन उसकी हिम्मत फिर जवाब दे गयी! कभी-कभी खाने-पीने का त्याग खा-पी लेने से अधिक तृप्ति प्रदान करता है - इसका अनुभव कन्हैया को आज एक बार फिर हुआ. वैचारिक तृप्ति पाकर वह थोड़ा चैतन्य हुआ, लेकिन प्रतीक्षा करते हुए वह जल्दी ही थककर ऊंघने लगा! थोड़ी ही देर हुई होगी कि उसे किसी का पैर लगा. वह हड़बड़ाकर उठ बैठा! कमरे के भीतर से लोग निकलने लगे थे. संभवतः दूल्हे महाराज का नाश्ता हो चुका था और अब वे वरमाला कार्यक्रम के लिए तैयार थे. वीडियो वाले और अन्य फोटोग्राफर तैयार थे. कन्हैया भी अनजाने ही 'शूट' हो चुका था. उसे अच्छा लगा - उसका भी अस्तित्व है, भले ही वह सामाजिक पिरामिड में निचली पंक्ति में ही है. यह सोच उसे पता नहीं क्यों अजीब तसल्ली हुई कि अजय भी इस पिरामिड में कहीं बीच में ही है, शीर्ष पर तो है नहीं. फिर क्या फर्क पड़ता है कि कौन कहाँ है?....

वह अपनी तसल्ली की गणित में खोया हुआ था कि अजय अपने दोस्तों-रिशतेदारों से घिरा बाहर आता दिखायी पड़ा. उसे देखते ही कन्हैया पहचान गया. वह पुकारना ही चाहता था कि वीडियो वाले जो अजय को फोकस किये हुए थे, आगे आ गये. रोशनी इतनी तेज़ कि सामने कौन-कौन है, अजय को ठीक से पता ही नहीं चला - कन्हैया का तो बिल्कुल ही नहीं, क्योंकि उसका साथ छूटे लगभग पांच साल हो रहे थे और उसका संबोधन शायद वह सुन नहीं पाया. कन्हैया को धकेलते फोटोग्राफर टीम आगे बढ़ी, फिर धीरे-धीरे सधे क्रमों से पीछे की ओर. ...कन्हैया

मन मसोस कर रह गया।

वर को घेरे हुए लोग सिंहासन की ओर बढ़ चले। कन्हैया भी पीछे-पीछे चला, लेकिन दस कदम चलते ही वह ठिठक गया और पता नहीं क्या सोच कर वापस लौटने लगा। पंडाल के किनारे अति साधारण कपड़ों में कुछ लोग खड़े थे। उसने अपने को शामिल करने की असफल कोशिश की। फिर वहां से दूर हटकर एक किनारे कोई दस मिनट तक वह इधर-उधर देखता रहा कि शायद कोई जान-पहचान का चेहरा दिख जाय, मगर कोई पहचानी सूरत नहीं दिखायी दी। हां, खाने के पंडाल के पास कैटर के दो-तीन मजदूर अवश्य दिखायी दिये जो कभी उसके साथ रोशनी के हंडे उठाते थे। वह उन्हीं के पास जाने को हुआ कि एक आदमी जो शक्ल-सूरत से बाराती लग रहा था, ने उसकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि डाली। कन्हैया घबरा सा गया लेकिन उसने उत्तर में हाथ जोड़ लिये। वह आदमी मुस्करा कर आगे बढ़ गया। कन्हैया धीरे-धीरे मजदूरों के पास पहुंच गया, लेकिन उनमें से किसी ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वह उनसे मेल-जोल के लिए कुछ कहना चाह रहा था, पर उसको कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या बात करे। तभी उनमें से एक ने पूछ लिया, “तुम यहां कैसे?” कन्हैया जैसे सकपका गया। सफाई देते हुए बोला, “यार! अपने ही यार की शादी है, हम दोनों साथ पढ़े हैं.....” मजदूर ने लगभग चौंकते हुए कहा, “अच्छा, तो आप बाराती हैं! न्योते में आये हैं!! आइए, आइए, कुछ जल-पान कीजिए....” फिर अपने साथी मजदूर की ओर मुखातिब हो व्यंग्य में बोला, “अरे महावीर! साहब के लिए कुर्सी लाओ, कुछ नाश्ता-पानी भी लाओ, आप हमारे मेहमान हैं भई!”

कन्हैया तिलमिला कर रह गया। उल्टे पांवों जयमाल वाले पंडाल की तरफ लौटने लगा। ऐसा लग रहा था कि उसके पांवों में दो-दो ईंटें बांध दी गयी हों। पैर उठ नहीं रहे थे। कोई चार-छः कदम चला होगा कि अचानक बाहर लौटने के लिए मुड़ा, तभी वधू को ला रही लड़कियों और औरतों पर उसकी नज़र पड़ी। वह एक ओर हो गया, पर किनारे होने की कोशिश में वह एक ऐसे व्यक्ति से टकरा गया जो उसे मजदूर के रूप में जानता था। उसने फटकार लगायी, “चलो बाहर, कहां घुस आये हो यहां!” कन्हैया की हिम्मत जवाब दे गयी थी। अजय से मिले बिना ही वह पंडाल से बाहर आ गया।

घर पहुंचते-पहुंचते रात के ग्यारह बज रहे थे। अजय से मिलने के चक्कर में उसे मजदूरी लेने की भी सुधि न रही थी। पत्नी ने कल अपने मायके जाने की बात दुहरायी। वहां एक विवाह में शामिल होना था। कुछ कपड़े वगैरह भी लेने थे। घर में करीब दो

सौ रुपये थे। अगर आज के सौ रुपये मिल जाते, तो काम बन जाता। अब समस्या थी कि सबेरे आठ वाली गाड़ी कैसे पकड़ी जाये? इतनी जल्दी सौ रुपयों का इंतज़ाम कैसे हो? आखिर यह तय हुआ कि पत्नी चली जाये, वह बाद में आयेगा। वैसे भी दो दिन पहले जाकर भी वह क्या करता! ससुराल में खाली बैठ रोटियां तोड़े?

सबेरे जब कन्हैया अपनी पत्नी को ट्रेन में बिठाकर लौट रहा था, तो रास्ते में उसकी साइकिल के आगे एक सजी-धजी गाड़ी धीमी गति में चल रही थी जिसमें नवदंपति बैठे थे। गाड़ी के अचानक ब्रेक लगा देने पर कन्हैया की साइकिल उससे टकरा गयी और वह संभलते-संभलते गिर पड़ा। ड्राइवर और उसके बगलवाली सीट पर बैठे एक नवयुवक दोनों ने लगभग एक साथ भद्दी - सी गाली देते हुए कन्हैया को फटकारा। यद्यपि इस प्रकार की हल्की-फुल्की टक्करें और गालियां सुनने का वह आदी हो चुका था, पर पता नहीं क्यों आज वह जवाब दे बैठा। यह जवाब गाड़ी में बैठे नवयुवक को हज़म न हुआ। वह कार से उतरा और लपककर कन्हैया के एक थप्पड़ जड़ दिया। यह कन्हैया से बरदाश्त न हुआ। साइकिल छोड़ उसने नवयुवक को घूसे से जवाब दिया। नवयुवक इसके लिए तैयार न था। तन से अधिक मन आहत हुआ। वह नवयुवक कन्हैया पर पिल पड़ा। कन्हैया दम-खम में उससे बीस था और अवस्था में भी थोड़ा बड़ा। उसने अपनी सामर्थ्य भर जवाबी हमला किया। दोनों की गुत्थम-गुत्था देख ड्राइवर सहित राह चलते लोग बीच-बचाव के लिए आ गये। गाड़ी में बैठे नवविवाहित युवक से भी न रहा गया और वह कार से बाहर आ गया। कन्हैया ने उसे पहचाना तो, पर गुस्से के मारे मुंह फेर लिया।

लेकिन यह क्या ? अजय लपककर कन्हैया के पास पहुंचा और उसका हाथ पकड़कर कहा - “अरे दोस्त! अपने साले को माफ नहीं करोगे?” उसका इशारा नवयुवक की ओर था। कन्हैया और नवयुवक, दोनों, अभी भी गुस्से में थे, पर प्रेम के आगे क्रोध चाहकर भी कुछ नहीं कर पा रहा था। कन्हैया शर्मसार था, तो नवयुवक भी शर्मिंदा था....

अगले पल मानवीयता अतीत के सागर में डुबकियां लगा रही थी। दोनों दोस्त अमीरी-गरीबी को विस्मृत कर एक-दूसरे के गले मिल रहे थे। कन्हैया की अश्रुपूरित आंखें वह सब कह रही थीं जो संभवतः वाणी की सामर्थ्य से परे था।

नववधू अजय के इस रूप पर न्यौछावर थी।

३/२९ विकास नगर, लखनऊ २२६-०२२
फोन : ०५२२- २७६८०५९, ९३३५६१८२८६ (मो.)



‘रचना रचनाकार को तलाश लेती है!’

✍ राजेंद्र वर्मा

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार खत्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, आमने-सामने. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुत्री सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड्से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरिन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक ‘अंजुम’, राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रज़ाक, मदन मोहन ‘उपेंद्र’, भोला पंडित ‘प्रणयी’, महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद ‘नूर’, डॉ. तारिक असलम ‘तस्नीम’ और सुरेंद्र रघुवंशी से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है राजेंद्र वर्मा की आत्मरचना.

रचनाकार के सम्मुख प्रायः यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि वह क्यों लिखता है? कैसे? अर्थात् रचनाप्रक्रिया की बात तो बाद में आती है. आज मेरे सामने भी यही प्रश्न है. साहित्यिक कहावत है कि लेखक उपन्यास में आत्मकथा और आत्मकथा में उपन्यास लिखता है. वह ऐसा क्यों करता है? मुझे लगता है कि वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि वह दोहरा चरित्र जीता है - एक वह, जो वह जीना चाहता है और एक वह, जो वह जीता है. आज के परिवेश में, बल्कि मैं तो कहूंगा प्रत्येक काल में, आदर्श और व्यवहार के मध्य समन्वय किये बिना सामाजिक जीवन संभव नहीं. आदर्श से समाज नहीं चलता और यथार्थवादी व्यवहार से मनुष्य-भाव नहीं बचता. इसलिए दोनों में ताल-मेल ज़रूरी है.

रचना-प्रक्रिया के संबंध में लेखकों से अधिकतर यही सुना गया है कि परिवेश में व्याप्त विसंगतियां उसे उद्वेलित करती हैं और वह रचनात्मक होना शुरू हो जाता है. अध्ययन-मनन, विचार-विमर्श आदि के बाद एक-दो सिटिंग में रचना का ड्राफ्ट फाइनल हो जाता है. फिर उसमें संशोधन-संपादन, यानी जोड़-घटाव और परिवर्तन के पश्चात्, रचना पाठकीय स्वरूप में आ जाती है. मेरी भी यही रचना-प्रक्रिया है. हां, कविताओं और गद्य के मामले में एक अंतर है. वह यह कि कविता चलते-फिरते भी हो जाती है,

जैसे कोई दोहा, शेर आदि, लेकिन गद्य बाक्रायदा सिटिंग चाहता है.

इस ‘क्यों’ और ‘कैसे’ की जब कभी पड़ताल करता हूं, तो पाता हूं कि रचना के प्रादुर्भाव में मैं मात्र माध्यम हूं - लेखक, लिखा कोई और रहा है. थोड़ा सरल करें तो, ‘बस लिख जाता है!’ कभी-कभी तो लगता है कि लेखन-वेखन सब अप्रत्याशित-सा है और यह रचना है जो रचनाकार को तलाश लेती है. चाहे फॉर्म हो या कंटेंट, दोनों रचनाकार के कहने में नहीं. आप चाहकर नहीं लिख सकते. जैसे आपके भीतर एक कलाकार रह रहा है पर वह अपनी मर्जी से प्रदर्शन करता है, आपके कहने से नहीं. हां, यह अवश्य है कि उसके अनुकूल वातावरण बनाना आपका कार्य है. यह कार्य जितनी जल्दी संपन्न होगा, कलाकार उतनी ही जल्दी सबके सामने आयेगा.

बहरहाल अपनी कहानी शुरू करता हूं. मेरा जन्म बाराबंकी जनपद (उ.प्र.) के मुख्यालय से लगभग ३० कि.मी. उत्तर स्थित सधई पुरवा (धमसड़) ग्राम में वर्ष १९५५ के मार्च की १५/१६ रात्रि को एक साधारण किसान परिवार में हुआ. तीन भाइयों में सबसे बड़ा मैं. प्रारंभिक शिक्षा गांव से एक मील दूर प्राइमरी स्कूल, असोहना में हुई. जूनियर हाईस्कूल और हाईस्कूल की

पढ़ाई फतेहपुर में हुई जो गांव से करीब ५ कि.मी. है. इंटरमीडिएट बाराबंकी से किया. घरेलू आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि खाने-पीने की कमी नहीं, पर उड़ाने लायक नहीं. पहले अच्छी खासी खेती थी पर पारिवारिक बंटवारे के चलते वह इतनी ही बची कि इंटर तक शिक्षित होने पर यह ज़रूरी समझा जाने लगा कि किसी तरह छोटी-मोटी नौकरी को ध्यान में रखकर आगे की पढ़ाई की जाय.

१९७५ में बाराबंकी से थर्ड डिवीजन में इंटर करने के बाद लखनऊ आ गया और जी.आई.टी.आई. में अंग्रेज़ी शॉर्टहैंड के कोर्स में एडमिशन लिया. जून १९७६ में कोर्स तो पूरा हो गया, लेकिन अंग्रेज़ी में दक्षता न होने के कारण स्टेनो की नौकरी नहीं मिल सकी. फिर हिंदी टाइप सीखी. करीब छः महीने बाद नज़ीराबाद में टाइपिंग की एक दुकान पर हिंदी-अंग्रेज़ी टाइप का कार्य शुरू किया - आधे पैसों पर! दुकान-मशीन, कागज़-कार्बन और ग्राहक सभी कुछ दुकानदार का, बस मेहनत मेरी. पूरी मेहनत, लगन और ईमानदारी के बावजूद मुझ पर गरीबी का ही राज था. घर से पैसे न तो मांगते बनता था और न ही आराम से मिलने वाले थे. दिन भर भी बैठे रहने पर भी बमुश्किल चार-पांच रुपये का काम. दो-ढाई रुपये की तो चाय भी पी जाता. लगभग साल-भर की अर्ध-बेरोज़गारी ने मुझे प्रतिक्रियावादी बना दिया था. मैं प्रायः व्यवस्था पर आलोचनात्मक टिप्पणियां किया करता. कभी-कभी ये टिप्पणियां दुकानदार को भी अप्रत्यक्षतः संबोधित होती थीं, फिर भी वह उन्हें नज़रअंदाज करते हुए जब कभी काम न के बराबर होता, मुझे दो-ढाई रुपये दे दिया करता और मैं उसका श्रद्धालु हो जाता. यह क्रम जून १९७७ तक चला जब तक मेरी नौकरी न लग गयी.

जिस दुकान पर मैं बैठता था, वहीं मेरी ही उम्र का एक और लड़का बैठता था - गोपाल. वह केवल हिंदी टाइपिंग करता था. वह सुमुख, गोरा और मृदुभाषी था. उसकी स्पीड भी मुझसे अधिक थी. ज़ाहिर था कि दुकानदार और अनेक नियमित ग्राहकों को वह प्रिय था वह मुझसे अधिक कमाता था. मैं उससे व्यावसायिक ईर्ष्या रखता था. २२ वर्ष का होने के बावजूद मैं अपने क्रद-काठी से ज़्यादा से ज़्यादा १८ का लगता था. दाढ़ी-मूंछें भी नहीं - मामूली रेख थी. रंग भी काला, जुबान भी कड़वी. बात-बात पर अपनी ही हांकता था. हालांकि उसमें सच्चाई भी थी, पर जैसा कि सभी जानते हैं, केवल सच्चाई से क्या होता है, वह मीठी बानी में सनी-ल्लिपटी होनी चाहिए. कबीर मेरे प्रिय थे - 'निंदक नियरे राखिए,

आंगन कुटी छवाय.' मुझमें एक खूबी थी जो गोपाल में न थी. मेरी विचारशक्ति उससे तीक्ष्ण थी. उस समय हिंदी में प्रार्थनापत्र देने पर बड़ा जोर था. हिंदी में प्रार्थना पत्र बनाकर लिखना/टाइप करना तथा अंग्रेज़ी का काम मेरे जिम्मे था. मेरी अंग्रेज़ी कामचलाऊ थी, सो अंग्रेज़ी में छोटे-मोटे सर्टीफिकेट बनाकर टाइप करना भी मेरे ही जिम्मे था. शायद यही कारण थी कि गोपाल और दुकानदार, दोनों मुझे बर्दाश्त करते थे.

गोपाल को पुरानी फ़िल्में देखने का बड़ा शौक था. मुझे नयी-पुरानी, कोई भी फ़िल्म अच्छी लगती थी, लेकिन धनाभाव के चलते यह शौक पूरा नहीं कर सकता था. गोपाल के साथ मेरा ऐसा रिश्ता था कि उसमें दोस्ती भी थी और ईर्ष्या भी. धीरे-धीरे ईर्ष्या का भाव खत्म होने लगा और वह मेरा अच्छा दोस्त बन गया था. मौक़ा निकालकर हम दोनों फ़िल्में देखने लगे. अधिकतर टिकट वही खरीदता - मैं इंटरवल में चाय-खीरा-पेटीज़ का भार वहन करता.

उस दौरान कुछ फ़िल्में देखी थीं जिनकी छाप आज तक मेरे मनोमस्तिष्क पर बनी हुई है, जैसे 'मदर इंडिया', 'आनंद', 'मुझे जीने दो', 'हरिश्चंद्र तारामती', 'सांझ और सवेरा', 'मुग़ले आजम', 'विदाई', 'मौसम', 'आंधी', 'संगम', 'छलिया', 'अनाड़ी', 'जिस देश में गंगा बहती है'. 'शोले', 'दीवार', 'चरस' जैसी फ़िल्मों को भी खूब मन से देखता था. राजकपूर, सुनील दत्त, अमिताभ बच्चन मेरे प्रिय हीरो थे. कुछ फ़िल्मों का मेरे ऊपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि बस पूछिए मत- 'आनंद' के अमिताभ, 'जीने की राह' के जीतेंद्र, 'मदर इंडिया' की नर्गिस और उसके सुनील दत्त और 'शोले' के तो लगभग सभी चरित्र जैसे बार-बार मेरी आंखों के सामने आ जाते हों. कुल मिलाकर मेरी एक ऐसी दुनिया निर्मित हो गयी कि मुझे लगता कि फ़िल्म के बिना जीवन भी भला कोई जीवन है? प्रत्येक कलाकार के प्रति मैं श्रद्धा से भर उठता. गोपाल में भी एक कलाकार था - वह पुरानी फ़िल्मों के गाने बहुत अच्छा गाता था - विशेषतः मुकेश और मन्ना डे के गाने हुए. फ़िल्मों के अलावा प्रेमचंद की कहानियों के भी हम दोनों फैन थे. ईदगाह, दो बैलों की कथा, मंत्र, पंच परमेश्वर, क़फ़न, सवा सेर गेहूं आदि पर हम लोग प्रायः चर्चा करते.

संयोग से हाईकोर्ट के एक वकील के यहां से कुछ काम आया. रिट पिटीशन टाइप करनी थी. अर्जेंट थी. वैसे तो दुकान नौ-साढ़े नौ तक बंद हो जाती थी, पर यदि काम पूरा किया जाता तो दस-ग्यारह बजता. मुझसे दुकानदार ने पूछा - "अभी करोगे या सबेरे

जल्दी आके.” मैंने कहा - काल्हि करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब!” वह खुश हुए और कहा - “ठीक है तुम काम पूरा करो.” मैं खाना खाके आता हूं. उस समय साढ़े आठ बजे होंगे. काम पूरा करते-करते ग्यारह बज गये.

अगले दिन मुझे वकील साहब के यहां पार्ट-टाइम का जॉब मिल गया. सौ रुपये महीना देने की बात तय हुई. थोड़े-ही दिनों बाद मित्र गोपाल ने उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी लखनऊ के कार्यालय में एक नृत्यशास्त्री से मिलवाया. श्री विक्रम बहादुर सिंह, जो वहीं पास के मुहल्ले ख्यालीगंज में रहते थे. सिंह साहब ने अकादमी के सांस्कृतिक सचिव, डॉ.शरद नागर से मिलवाया और मेरी सिफारिश करते हुए कहा कि अच्छा लड़का है, कहीं लगा दीजिए. नौकरी की इसे सख्त जरूरत है.

अकादमी कार्यालय में मेरा हिंदी टाइपिंग और हिंदी भाषा का टेस्ट हुआ. साहित्यिक और कार्यालयीन शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी टाइपिंग का भी टेस्ट हुआ. मैं पास हुआ. एक क्लर्क महोदय एक माह के अवकाश पर थे. मुझे उनके स्थान पर ‘लीव वैकेन्सी’ में रख लिया गया. वेतन रु. २००-३०० के स्केल वाला. पहली तनख्वाह रु. ३६८ मिली.

जून १९७७ में जब नौकरी लगी, तभी प्रख्यात उपन्यासकार अमृतलाल नागरजी से मिलने का अवसर मिला. उस समय वे बहुचर्चित उपन्यास ‘नाच्यौ बहुत गोपाल’ लिख रहे थे. नागरजी पांडुलिपि बोलकर लिखते थे. वास्तव में डॉ.शरद नागर ने मेरा चयन इसलिए भी किया था कि वे मुझे नागरजी की सेवा में भी लगाना चाहते थे. यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी. सबेरे साढ़े सात - आठ बजे से सात बजे तक अकादमी कार्यालय में लिपिक-टंकक का कार्य. उस समय अकादमी के कार्यालय का समय यही था. मेरी लिखावट भी ठीक-ठाक थी और मुझे साहित्यिक भाषा समझने या लिखने में कोई परेशानी नहीं हुई. नागरजी ने जब डॉ.शरद नागर से यह कहा कि अबकी बार उन्होंने ठीक आदमी दिया है तो मेरा सीना चौड़ा हो गया. वास्तव में मुझसे पहले दो-तीन लोगों ने नागरजी का डिक्टेशन लिया था, पर वे उनकी पसंद पर खरे नहीं उतरे थे. संभवतः उनमें साहित्यिक रुचि का अभाव था. यद्यपि मेरे घर में न तो कोई साहित्यकार था और न ही साहित्यिक वातावरण, तथापि पिताजी की प्रेमचंद साहित्य में विशेष रुचि तथा रामचरित मानस (तुलसी) के अखंड पाठ, जो दो तीन वर्ष में एक बार अवश्य ही हुआ करता (जिसमें मैं बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया करता.) आदि आयोजनों के कारण मुझमें

साहित्यिक अभिरुचि प्रछन्न थी. कई फ़िल्में मैंने माता-पिता के साथ भी देखीं - भक्त प्रल्हाद, संपूर्ण रामायण, घर-घर की कहानी, दो बीघा जमीन आदि. प्रेमचंद का गोदान भी टुकड़ों-टुकड़ों में पढ़ चुका था. आल्हा, कीर्तन, बिरहा आदि चौपतिया भी पढ़ने को मिलती रही थीं. रमई काका की ‘बौछार’, सुभद्रा कुमारी चौहान की ‘बचपन’ कविता, निराला की ‘वह तोड़ती पत्थर’ माखन लाल चतुर्वेदी की ‘एक पुष्प की अभिलाषा’, आदि कविताओं से मन में कविता की लय भी बैठी हुई थी.

नागरजी का सान्निध्य मेरे लिए वरदान स्वरूप सिद्ध हुआ. मेरी साहित्यिक अभिरुचि का विकास हुआ. जून १९७७ से ही साहित्यिक कृतियों का पढ़ना प्रारंभ हो गया था, पर दिनचर्या इतनी व्यस्त थी कि पढ़ने का समय नहीं मिल रहा था. फिर भी प्रेमचंद का ‘गबन’, ‘सेवाश्रम’, ‘सेवासदन’, ‘निर्मला’, भगवती चरण वर्मा का ‘चित्रलेखा’ आदि मैंने साल भर में पढ़ डाला था. इस प्रकार साहित्य से मेरा प्रथम परिचय हुआ.

नागरजी का ‘नाच्यौ बहुत गोपाल’ अक्तूबर-नवंबर १९७७ में पूरा हुआ. कपड़े में सीलबंद पांडुलिपि मेरे हाथों में सौंपते हुए बाबूजी ने कहा - “बेटा! इसे संभालकर रजिस्ट्री कर आओ.” चौक पोस्ट ऑफिस (लखनऊ) में मैंने राजपाल एंड सन्स के नाम रजिस्ट्री करायी और रसीद लाकर बाबूजी को दी. वे खुश हुए और मुझे खूब आशीष दिया. उस समय यह बात बहुत साधारण लगी थी, पर आज सोचता हूं कि मुझे यदि अपनी पांडुलिपि (जिसकी दूसरी कॉपी न हो) किसी को सौंपनी हो, तो मुझे कई बार सोचना पड़ेगा. बाबूजी ने कभी यह अहसास नहीं होने दिया कि मैं उनका स्टेनो हूं. मुझे अपने बराबर तख्त पर बिठाते थे. नाश्ता पानी भी करवाते थे और साथ ही करते थे. उनकी पत्नी (बा) भी मुझे बहुत स्नेह देती थीं. उन स्मृतियों के क्षण मेरे लिए अत्यंत सुखद, प्रेरक और धरोहर हैं.

अक्तूबर ७७ में एक टूटी-फूटी मुक्त छंद की (रचना) लिखी थी - ‘विचारों के बवंडर में’. बाबूजी को दिखायी. मुस्कराते हुए कहा - ‘तेवर तो निराला वाले हैं, लेकिन अभी पढ़ो. बेटा! अगर कुछ लिखना है तो कम-से-कम पांच साल मन के कागज़ पर ही लिखो.’ मैंने मन-ही-मन उनका धन्यवाद किया और हाथ जोड़ दिये. उनके हाथ आशीष देने लगे. आंखों में प्रेम उमड़ आया. कभी-कभी लगता है कि आज मैं जो कुछ हूं उसके मूल में केवल बाबूजी (नागरजी) का ही आशीर्वाद है, मेरा अपना कुछ भी नहीं.

नागरजी के सान्निध्य के अतिरिक्त प्रख्यात कथक सम्राट लच्छू महाराज जी का भी मुझे सान्निध्य-आशीर्वाद मिला। महाराजजी उस समय कथक केंद्र के निदेशक थे और मैं अकादमी में क्लर्क। कथक केंद्र से संबंधित पत्राचार के संबंध में वे मुझे बुलाते रहते थे। अकादमी की नौकरी के दौरान मुझे शास्त्रीय गायक पं. भीमसेन जोशी, पं. जसराज, पं. हरीप्रसाद चौरसिया, कव्वाल हबीब पेंटर आदि से भी व्यक्तिगत भेंट का अवसर मिला। फिल्म निर्देशक श्याम बेनेगल, एम.के.रैना, अभिनेता नसीरुद्दीन शाह आदि से भी भेंट हुई। नाट्य निर्देशक कुमुद नागर, डॉ.अचला नागर तथा विश्वनाथ मिश्र जी से मुझे बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

अकादमी की नौकरी अस्थायी थी और साथ ही नागरजी द्वारा दिलायी हुई। यह मेरे आत्मसम्मान को स्वीकार न था। अतः मैं अन्यत्र नौकरी के लिए हाथ-पांव मारा करता था। बाबूजी कहा करते थे - “बेटा! नौकरी कलाकार को खा जाती है。” लेकिन नौकरी के बिना गुजारा भी कहां था? अप्रैल १९७८ में उ.प्र. सहकारी संघ में स्थायी नौकरी लगी। दो साल बाद सी. डी. आर. आई. में लगी। तब तक मैंने कानपुर विश्वविद्यालय से प्राइवेट बी.ए. कर लिया था। अप्रैल १९८२ में स्टेट बैंक में क्लर्की मिली। तब से दो-तीन प्रमोशन पाकर वहीं जमा हूं। नौकरी करते-करते एल.एल.बी. की और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ बैंकर्स से सी.ए.आई.आई.बी. सोचा था, वकालत करूंगा, लेकिन बैंक की नौकरी नहीं छूटी।

१९७९ में मेरा विवाह हुआ। पत्नी भी पास के गांव की ही हैं-प्राइमरी पास, लेकिन निरंतर लगन से हल्की-फुल्की अंग्रेजी भी पढ़-लिख लेती हैं। सन् १९८० में पत्नी के साथ अपने दोनों भाइयों को भी ले आया। दोनों पढ़ने वाले थे। एक का एडमिशन आठवीं में और दूसरे का पहली में कराया। घर से आर्थिक सहायता का आश्वासन था, पर खेती-बाड़ी बिल्कुल नेताओं के वादों की तरह होती है - कभी पूरा करती है, कभी खाली हाथ टरका देती है, कारण चाहे जो हो - बाढ़, सूखा या कोई रोग। आर्थिक तंगी का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह १९९५ तक चला। जब तक छोटे भाइयों की नौकरियां नहीं लग गयीं। मेरे भी बच्चे (दो बेटे) इसी संघर्ष में पले-बढ़े, लेकिन हम सब की मेहनत बेकार नहीं गयी। छोटा भाई अमेरिका की कंपनी जी.ई.में प्रिंसिपल कन्सल्टेंट है, बड़ा बेटा सेन्युरियन बैंक में मैनेजर है और छोटा बेटा मर्चेंट नेवी में ट्रेनी अधिकारी। १८०० स्केयर फिट का मकान है और खुद भी अब बैंक में मैनेजर हूं। जितना सोचा था, उससे कहीं

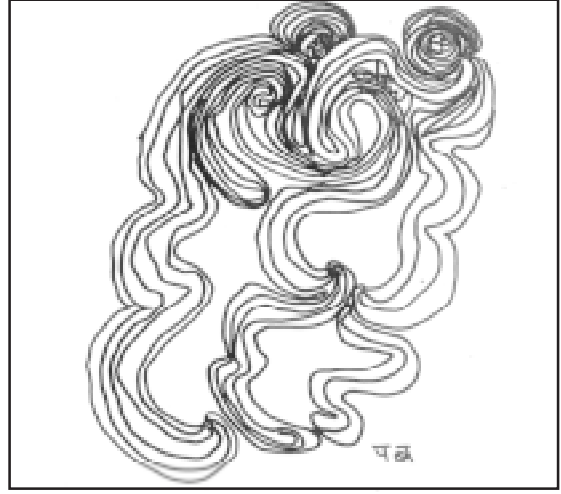
ज्यादा मिला है। ईश्वर को धन्यवाद के साथ-साथ अनेक मित्रों-सहयोगियों को भी धन्यवाद देना चाहूंगा क्योंकि इसमें उनका भी पर्याप्त श्रेय है।

घरेलू झंझटों में पड़कर साहित्य-सेवा-सर्जना पिछड़ गयी थी। पहली कहानी अप्रैल १९८२ में लिखी - ‘दंश’ जो स्वतंत्र भारत (लखनऊ) में १९८४ में छपी थी। फिर १९८९ तक सन्नाटा जब एक व्यंग्य (रचना) ‘नवभारत टाइम्स’ में प्रकाशित हुई। यह प्रकाशन अखिल भारतीय व्यंग्य प्रतियोगिता में तृतीय पुरस्कार के रूप में था। बीच में कुछ मुक्तछंद कविताएं और लघुकथाएं लिखीं। कविताएं बैंक की गृह पत्रिकाओं में छपीं, लेकिन लघुकथा पहली बार ‘राष्ट्रीय सहारा’ में जनवरी १९९५ में छपी - ‘गांधी जी का चौथा बंदर’।

कुछ दिनों तक ‘हिंदी बनाम अंग्रेजी’ भी चला। वास्तव में, बैंक में और वकीलों के साथ अंग्रेजी में काम करने सी. ए. आई. आई. सी. और एल. एल. बी. अंग्रेजी माध्यम में करने के कारण मैं सामाजिक समस्या विषयक लेखन अंग्रेजी में करने लगा। कुछ पत्र तथा लेख ‘नेशनल हेराल्ड’ तथा ‘दी पायनियर’ में छपे भी लेकिन लगा कि मेरे साहित्य की भाषा हिंदी ही हो सकती है। इसमें ही मन की बात कही जा सकती है। बैंक में राजभाषा प्रतियोगिताओं में पुरस्कार मिले। उत्साह और बढ़ा। फिर शुरू हुआ पढ़ाई का सिलसिला। टैगोर, प्रेमचंद, रेणु, नागार्जुन, परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, भगवती चरण वर्मा, यशपाल, मनोहर श्याम जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी आदि को पढ़ा। नयी दिशा मिली। कुछ कविता संग्रह भी पढ़े, विशेषतः अज्ञेय द्वारा संपादित ‘तार सप्तक’। लखनऊ के मशहूर शायर द्वय जनाब कृष्ण बिहारी ‘नूर’ तथा वाली आसी जी से भेंट हुई। उनकी गजलें उनके ही श्रीमुख से सुनने का अनुभव अद्भुत था। बशीर बद्र, निदा फाज़ली आदि की गजलें और नज़्में भी आकर्षित करती थीं। गोपालदास नीरज जी को तो बचपन से ही पढ़ता-सुनता आया हूं। उनकी तथा बच्चन की कविता की ओर झुकाव हुआ। मुक्त-छंद कविता की अपेक्षा छंद कविता मुझे अधिक आकर्षक लगने लगी। उसके प्रति मोह उत्पन्न हुआ, पर साधना न थी। केवल मोह से काव्य रचना नहीं संभव थी। अतः कवि गोष्ठियों में जाना शुरू किया। ‘चेतना साहित्य परिषद’ से जुड़ा - सामान्य सदस्य से लेकर उपाध्यक्ष तक। फिर राजनीति के चलते स्वयं को पृथक कर लिया। इस संस्था से जुड़ने का एक कारण यह भी था कि उससे जुड़े एक सदस्य-कवि ने मेरा उपहास उड़ाते हुए यह चुनौती भी

अप्रत्यक्ष रूप से दे डाली थी कि छंद में लिखना मेरे वश की बात नहीं. मुझे उनको उत्तर देना था. मैंने सोच लिया, अब लिखूंगा तो केवल छंदोबद्ध कविता ही लिखूंगा. दैवयोग से १९९७ में मेरा पहला संग्रह कविता का आया तो वह दोहों का ही था. फिर गीत, गज़लें और गद्य में लघुकथाएं और कहानियां. कादंबिनी, हंस, कथाबिंब, समांतर, इंद्रप्रस्थ भारती, संकल्परथ, शुभ तारिका, हिंदुस्तान, राष्ट्रीय सहारा आदि पत्र-पत्रिकाओं में छपा. आत्मविश्वास बढ़ा.

१९९५ में विचार बना था कि एक पत्रिका निकाली जाय. मेरे मित्र हैं - ओमप्रकाश ग्रोवर. उनका प्रिंटिंग प्रेस था. वे भी साहित्य प्रेमी थे. मैं साहित्यकार बनना चाहता था और उससे बढ़कर साहित्यिक प्रचार-प्रसार करना चाहता था. पर घरेलू व्यस्तताओं के कारण पूरी तरह से साहित्य से जुड़ नहीं पा रहा था. अंदर-ही-अंदर घुट रहा था. योजना बनी कि छोटा-मोटा मंच तैयार किया जाय जिसमें साहित्य-सृजन को सामने लाया जाय. मित्र ने कहा कि मैं रचनाएं इकट्ठा करूं, वे उन्हें छाप देंगे. पत्रिका निकालने के लिए साजो सामान, नियम-कानून और साहित्य-संपर्क के लिए भाग-दौड़ होने लगी. आर.एन.आई. को शीर्षक आवेदित किये गये. 'अविरल मंथन' शीर्षक आ गया - ग्रोवर के नाम से. हम लोग उत्साहित थे. मित्रों से चंदा कर प्रवेशांक निकाला. जब से कुछ नहीं लगा. एकाध विज्ञापन भी मिल गये. तत्कालीन राज्यपाल महोदय श्री मोतीलाल वोरा द्वारा लोकार्पण हुआ - मार्च १९९६ में. अगला अंक छपा. थोड़ा घाटा आया. तीसरा अंक भी जैसे-तैसे छपा, लेकिन अब चौथे अंक के लिए पैसा नहीं. सामग्री आनी शुरू हो गयी थी. गंभीरता से कार्य करने की चुनौती भी. खेल-खेल में शुरू हुआ साहित्यिक खेल गंभीर मोड़ पर पहुंच चुका था. उत्तर प्रदेश के तत्कालीन संपादक विजय राय से मिला. उन्होंने सुझाव दिया - कोई विशेषांक निकालो. पांचवा अंक कहानी विशेषांक निकला. अतिथि संपादक थे - अमरीक सिंह 'दीप' (कानपुर) लेकिन मौलिक और अप्रकाशित सामग्री वे भी नहीं जुटा पाये. बहरहाल संयोजन अच्छा था. 'अविरल मंथन' के साथ-साथ मेरी भी ख्याति फैली. विज्ञापनों के लिए भाग-दौड़ की जो आवश्यकता थी, मुझसे नहीं हो पा रही थी. तिकड़म की भी कमी थी. एक मित्र ने कमीशन के आधार पर विज्ञापन की व्यवस्था की बात की, लेकिन बहुत सफलता नहीं मिली. करीब बीस-पच्चीस हजार के विज्ञापन इकट्ठे किये उन्होंने, पर पैसा नहीं दिला पाये. कुछ पैसा मिला, वे खुद ही पचा गये. दस-बारह अंकों तक लगभग एक लाख का घाटा हो गया. सन् २००२ में मेरा प्रमोशन हो गया और २००३ के प्रारंभ में मुझे



लखनऊ से बाहर जाना पड़ा. पत्रिका प्रकाशन का क्रम टूट गया. पंद्रह अंक निकले, लेकिन संतोष था कि अपनी सामर्थ्य से अधिक कार्य कर लिया. विशेषांकों की श्रृंखला में 'अविरल मंथन' ने कहानी, गज़ल, गीत, लघुकथा और हाइकु पर पठनीय सामग्री दी है. अब पुनः लखनऊ में हूं और सोच रहा हूं कि पत्रिका पुनः प्रारंभ करूं, लेकिन आलोचना पर, क्योंकि इस क्षेत्र में बहुत कम काम हो रहा है.

'अविरल मंथन' नामक साहित्यिक संस्था का भी गठन हुआ. १९९७ में, जो समय-समय पर साहित्यिक गोष्ठियां करती रही है. इसमें कविता तथा गद्य की विभिन्न विधाओं पर यथासंभव चर्चा होती रही है और काव्यपाठ भी. स्थानीय कवियों और गद्यकारों में मेरी पहचान बनी. पत्रिका के प्रकाशन-संपादन के दायित्व में आयी शिथिलता से मेरा व्यक्तिगत लेखन समृद्ध हुआ और स्वयं का लेखन जो बिखरा हुआ था, श्रृंखलाबद्ध हुआ और अब तक मित्रों की शुभकामनाओं से विभिन्न विधाओं में सात पुस्तकें आ चुकी हैं. इनमें से एक पर उ.प्र. हिंदी संस्थान से २०,००० रुपये का नामित पुरस्कार भी मिल चुका है. वर्ष २००५ में राजेंद्र वर्मा की साहित्यिक साधना पर कु. दीप्ति मिश्रा को एम.फ़िल. भी लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जा चुकी है.

कभी-कभी सोचता हूं कि मैंने जितना सोचा था, उससे कहीं अधिक मुझे मिला है. अपनी इस लघु यात्रा से पूर्ण संतुष्ट हूं. हां, अभी कई किताबें और आनी हैं - कहानी, निबंध, उपन्यास, बच्चों के लिए कुछ रचनाएं, आलोचनात्मक एवं समीक्षात्मक साहित्य. देखिए, कब और कितना क्या आ पाता है?

✉ ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६०२२

फोन - ०५२२-२७६८०५९, (मो.) ९३३५६१८२८६



साहित्य-सृजन मेरे लिए अद्भुत नशा है!

-डॉ. तिलकराज गोस्वामी

(वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. तिलकराज गोस्वामी शायद उत्तर भारत के एक ऐसे लेखक हैं जो पांच भाषाओं में हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी, पंजाबी व डोगरी में लिखते हैं. पर उनका सर्वाधिक लेखन हिंदी में ही हुआ है. साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उनकी तीस पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं. 'विमर्श' पत्रिका के संपादक सुपरिचित कहानीकार-कवि श्री सुभाषचंद्र गांगुली ने 'कथाबिंब' के लिए उनसे अनौपचारिक बातचीत की. उसी बातचीत के कुछ महत्वपूर्ण अंश यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं.)

• वे कौन-सी स्थितियां व प्रवृत्तियां होती हैं जो आपको लिखने के लिए प्रेरित करती हैं. आपके लिखने का उद्देश्य क्या है?

गांगुली जी, मेरे पास जीवन के विविध प्रकार के अनुभवों का विशाल भंडार है. मैंने अपने इस देश के अनेक भागों को देखा है. मेरे जीवन के शुरू के १६ वर्ष मनोरम पर्वतीय राज्य जम्मू कश्मीर में बीते. मेरी ननिहाल पंजाब के एक गांव में थी. मैं वर्ष में दो-तीन माह अपने ननिहाल में रहता था. ननिहाल-परिवार में खेती होती थी. वर्षों ननिहाल में गुज़ार कर मैंने एक किसान का जीवन जिया है. एक किसान के सारे काम जैसे हल चलाना, पाटा चलाना, गुड़ाई करना आदि सभी काम मैंने किये हैं. गांव मेरे रेशे-रेशे में बसा हुआ है. ईश्वर-प्रदत्त संवेदनशीलता व असीम कल्पनाशक्ति मेरे पास है. अपने अनुभवों को व्यक्त करके मुझे परम सुखानुभूति होती है. साहित्य सृजन मेरे लिए एक अद्भुत नशा है. पांच भाषाओं के साहित्य की पृष्ठभूमि मेरे पास है. पढ़ने का मुझे जुनून है. भाषा व शब्दों की कहीं कभी कोई कमी अनुभव नहीं होती. मैं रफ़ नहीं लिखता. मेरे सारे उपन्यास, कहानियां, निबंध आदि सीधे मेरे टाइपराइटर से निकले हैं. मुझे अधिक काटछांट की ज़रूरत भी महसूस नहीं होती. सोचता जाता हूं और टाइप करता जाता हूं. लेखन मेरी हॉबी नहीं वरन् मेरे जीवन का पावन उद्देश्य है. मेरे अनेक शौक हैं पर मैंने अध्ययन व लेखन को सदैव प्राथमिकता दी है. मैं अपने समाज के लिए लिखता हूं. मेरी मान्यता है कि कोई भी साहित्यिक कृति पाठकों को स्वस्थ मनोरंजन तो दे ही, पर उसके साथ-साथ वह उसे नयी दिशा भी दे. पाठक के मन में मानवीय मूल्यों के प्रति आदरभाव व निष्ठा उत्पन्न हो. रचना पढ़ने के बाद

पाठक को लगे कि वह मानवीय दृष्टि से कहीं उन्नीस से बीस हुआ है. जो रचना अधिक से अधिक लोगों में प्रेम, पवित्रता, दया, आशा व शांति के प्रति अनुराग लाने में सहायता देती है, उसे मैं श्रेष्ठ रचना मानता हूं.

• आपने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में प्रचुर साहित्य रचा है. क्या एक विधा से दूसरी विधा में जाने पर आपकी रचना-प्रक्रिया में कोई बदलाव आता है. क्या विधा बदलते समय किसी परेशानी का एहसास होता है.

एक विधा से दूसरी विधा में जाते हुए रचना-प्रक्रिया में बदलाव का आना तो स्वाभाविक होता है. पर मुझे इस बदलाव का कोई एहसास नहीं होता. दरअसल मेरा परिवेश तथा मेरे पात्र मुझे विमोहित किये रहते हैं. मुझे लगता है जैसे वे बोलते जा रहे हों और मैं उनके बोले शब्दों को टाइप करता जाता हूं. जहां तक एक विधा से दूसरी विधा में जाने की बात है उसमें मुझे कोई परेशानी नहीं होती. मेरी यह मान्यता है कि जब कोई जैनुइन साहित्यकार अनेक विधाओं में पूरी निष्ठा व लगन से लिखता है तो उसकी निष्ठा कहीं बटती नहीं बल्कि उस निष्ठा का संवर्द्धन होता है.

• समाज में ललित कलाओं विशेष रूप से साहित्य के दखल को आप किस रूप में देखते हैं? क्या आपको लगता है कि साहित्य समाज की मानसिकता बदलने में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है?

लेखक अपनी रचनाओं द्वारा समाज को नयी दिशा दे सकता है और देता रहा है. श्रेष्ठ कृतियों के दूरव्यापी प्रभाव पड़ते हैं. कार्ल मार्क्स का अमर ग्रंथ 'दास कैपिटल', टाल्सटाय, चेखव, गोर्की, दोस्ताव्यस्की, शैक्सपियर, मिल्टन आदि अनेक विदेशी



डॉ. तिलकराज गोस्वामी

जन्म : १३ अक्टूबर १९३०, जम्मू में .

मातृभाषा : पंजाबी

शिक्षा : एम.ए. (अंग्रेजी), अदीब आलम, विद्यावाचस्पति (पी.एच.डी.) व विद्यासागर (डी.लिट.) मानंद.

प्रकाशित साहित्य : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, पंजाबी व डोगरी भाषाओं में लेखन. सर्वाधिक लेखन हिंदी में. सुपरिचित पत्र-पत्रिकाओं में एक हजार से अधिक रचनाएं प्रकाशित. कतिपय रचनाओं का अन्य भाषाओं में अनुवाद. आकाशवाणी व दूरदर्शन से भी प्रसारण.

उपन्यास : उजली पीली धूप, समयांतर, अपना-अपना आकाश, चंदनमाटी, महाराज रणजीत सिंह, कुहरा और सूरजमुखी, मर्यादा, जहां रोशनी है, स्वदेश गौरव, एक और नूरजहां.

कहानी संग्रह : नया सवेरा, अपना घर अपने लोग, अंतराल के बाद, अमर बलिदान, अंधेरा-उजाला (उर्दू में), कौण चंगा कौण मंदा (पंजाबी में), मेरी प्रतिनिधि कहानियां.

काव्य-संग्रह : सूरज की शहादत, आवाहन आग का, इतिहास रचते हाथ, मेरी प्रतिनिधि कविताएं, हथेलियों के बीच (गीत-संग्रह), रोते पेड़ चिनार के (दोहा-संग्रह), मिला न वृंदावन (गीत-संग्रह).

निबंध संग्रह : इतिहास गवाह है.

यात्रा-संस्मरण : दिन यहां, रात वहां.

साहित्यकार हैं जिनकी कृतियों ने समाज की मानसिकता को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभायी हैं. अपने भारत में वीर सावरकर द्वारा रचित ग्रंथ 'भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम' कितने देशभक्तों व क्रांतिकारियों के लिए क्रांति की गीता सिद्ध हुआ. पंडित सुंदरलाल का महान ग्रंथ 'भारत में अंग्रेजी राज' ने इस देश के जनमानस में नवीन चेतना लाने में बड़ा जबरदस्त रोल अदा किया. बंकिमचंद्र की अमर कृति 'आनंद मठ' और उनके प्रेरक गीत 'वंदे मातरम्' का यह प्रभाव था कि देश के सहस्रों वीर

आलोचना : महान साहित्यकार भाई वीरसिंह.

बाल-साहित्य : वतन की राह में, देशरत्न.

अनुवाद : प्रो. रामनाथ शास्त्री की कृति 'डोगरी के महान साहित्य साधक देवीदत्त भडवाल' का अंग्रेजी में अनुवाद.

साहित्य सम्मान : प्रयाग की साहित्यिक संस्था 'अभिषेक श्री' द्वारा 'अभिषेक श्री', उत्तर प्रदेश कला भारती संस्थान द्वारा 'साहित्य श्री', कन्हैया लाल प्रागदास स्मारक समिति लखनऊ द्वारा 'काव्य श्री', हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'साहित्य सारस्वत' सम्मान, प्रयाग की कल्पित निधि द्वारा 'कैलाश श्री', डॉ. राधा मोहन मिश्र स्मृति सम्मान, अखिल भारतीय संस्थान भारतीय परिषद सम्मान, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति प्रयाग द्वारा 'साहित्य प्रवीण' उपाधि, सहस्राब्दी विश्व हिंदी सम्मेलन द्वारा 'सहस्राब्दी सम्मान', भारत सरकार के नियंत्रक महालेखा परीक्षक श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी द्वारा सम्मानित. हिंदी-अंग्रेजी के अनेक संदर्भ-ग्रंथों में उल्लेख. कई पुरस्कारों से सम्मानित.

डॉ. तिलकराज गोस्वामी संबंधित प्रकाशित पुस्तकें :

१. तिलकराज गोस्वामी का साहित्यिक परिदृश्य - सं. कृष्णेश्वर डींगर
२. तिलकराज गोस्वामी : व्यक्ति एवं साहित्यकार - कृष्णेश्वर डींगर
३. वरिष्ठ साहित्यकार : तिलकराज गोस्वामी - लेखक डॉ. संतकुमार
४. तिलकराज गोस्वामी के काव्य का अनुशीलन - सं. डॉ. रामकिशोर शर्मा
५. शोध-प्रबंध : तिलकराज गोस्वामी के गद्य साहित्य का अनुशीलन - डॉ. सुषमा लोखंडे द्वारा पीएचडी के लिए रचित शोध-प्रबंध
६. तिलकराज गोस्वामी का काव्य विमर्श और मूल्यांकन- ले. डॉ. अशोक बाचुलकर.

स्वाधीनता की बलिवेदी पर निज प्राणों की आहुतियां देने के लिए प्रेरित हो उठे. रामचरित मानस, श्रीमद्भगवद्गीता, कुरान, बाईबल तथा गुरुग्रंथ साहब जैसे सैकड़ों ग्रंथ हैं जिनसे मानवता का उत्थान हुआ.

• क्या आप मानते हैं कि साहित्यकार का अपना चरित्र उसकी रचनाशीलता को प्रभावित करता है ?

आमतौर पर लेखक का साहित्य उसके मन-प्राणों का दर्पण होता है. पर कुछ अपवाद भी हो सकते हैं. लेकिन मेरी यह मान्यता है

कि साहित्यकार के संस्कार जितने पावन, जितने सात्विक होंगे, उसका चरित्र जितना उज्वल होगा. उतनी ही उसके द्वारा रचित कृति उदात्त होगी, शिव, सत्य, सुंदर के तत्वों से शोभायमान होगी. ऐसी रचना अवश्य ही पाठकों के मन-प्राणों पर अपनी छाप अंकित करती है.

• आपके यात्रा संस्मरण भी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं. आपके संस्मरणों का एक संग्रह 'दिन यहां रात वहां' भी प्रकाशित हो चुका है. पर्यटन के प्रति अनुराग आपके मन में कैसे उत्पन्न हुआ?

पर्यटन के प्रचि रुचि मुझे अपने माता-पिता से विरासत में मिली. माता-पिता धार्मिक वृत्ति के थे. वे प्रायः वर्ष, दो वर्ष बाद हम बच्चों सहित किसी न किसी तीर्थस्थल पर जाते रहते थे. हम बहन-भाइयों को वे यात्राएं बहुत विमोहित करती थीं. समय के साथ-साथ यह रुचि बढ़ती गयी. रानीखेत से लेकर गुलमर्ग तक हिमालय का विशाल सिलसिला मेरा देखा हुआ है. मैं दूसरे-तीसरे वर्ष बाद दस-बारह दिनों के लिए पर्वतीय स्थलों में घूमने निकल जाता हूं. मेरे पर्यटन के शौक ने, प्रकृति से गहरे लगाव ने मेरे लेखन को बड़ी सुंदर पृष्ठभूमि दी है. मेरी रचनाओं को विस्तार व गहराई प्रदान की है. मेरी रचनाओं में पायी जानेवाली रोचकता का एक महत्वपूर्ण कारण प्रकृति का चित्रण भी माना गया है. मैं तो जीवन को भी एक यात्रा मानता हूं. 'चरैवेति-चरैवेति' मंत्र ने मेरे जीवन में एक मार्गदर्शक की तरह भूमिका निभायी है.

• आपने 'महाराजा रणजीत सिंह', 'एक और नूरजहां' व 'स्वदेश गौरव' जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं. क्या आपको नहीं लगता कि गत तीन-चार दशकों से ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम मात्रा में लिखे जा रहे हैं?

हां, मैं आपके इस विचार से सहमत हूं. दरअसल ऐतिहासिक उपन्यास का लेखन बहुत परिश्रम मांगता है. जिस व्यक्तित्व को लेकर आप उपन्यास लिखना चाहते हैं उसके जीवन को विस्तार से जानने के लिए आपको बीसों पुस्तकों का अध्ययन करना पड़ता है. उसके जीवन से जुड़ी घटनाओं को क्रमानुसार संयोजित करना होता है. कोई विवाद पैदा करनेवाले उल्लेखों से बचना होता है. आज के अधिकांश लेखक इस प्रकार के परिश्रम से बचना चाहते हैं. उनमें शॉर्टकट अपनाने की प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है. वे कम से कम मेहनत करके अपने प्रचार माध्यमों से अधिक से अधिक ख्याति अर्जित करने के फेर में रहते हैं. वे भूल जाते हैं कि

साहित्य जगत में अपनी पहचान बनाने के लिए जीवनभर निरंतर साधना करनी पड़ती है.

• कतिपय विचारकों का मानना है कि आज के भौतिकवादी व वैज्ञानिक युग में कविता की आवश्यकता नहीं रह गयी है.

आपका इस बारे में क्या विचार है?

श्रेष्ठ कविता अथवा साहित्य के अन्य रूपों की आवश्यकता हमेशा समाज को रही है और रहेगी. यह आवश्यकता व्यक्ति की अपनी रुचि पर निर्भर करती है. दुनिया के अनेक देशों में जो भौतिक व टेक्नॉलॉजी अथवा विज्ञान के क्षेत्र में हमसे कहीं आगे हैं वहां भी साहित्य के प्रति अनुराग में कोई कमी नहीं आयी. अपने देश की अपेक्षा वहां अधिक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं. श्रेष्ठ कविता व अन्य साहित्यिक कृतियों का सदैव हर कहीं स्वागत होता रहेगा. लोग शौक से पढ़ते रहेंगे.

• कविता ने हमेशा अपने को युगानुरूप परिवर्तन से गतिशील रखा है. क्या आप समझते हैं कि आज भी कविता ऐसा कर रही है?

केवल कविता ही नहीं वरन् साहित्य की अन्य विधाएं भी अपने रूप में बदलाव लाने के लिए गतिशील रही हैं. गत पचास-साठ वर्षों में कहानी विधा तथा कविता को भी कितने नये-नये नाम दिये गये, उनके बारे में समय-समय पर कितने आंदोलन चलाये गये, इस बारे में साहित्य के सुधी पाठक जानते हैं. इन आंदोलनों से भी साहित्य का संवर्द्धन हुआ. लेखकों में श्रेष्ठ साहित्य रचने के लिए परस्पर हारमोनियस कम्पीटेशन (सुखद प्रतियोगिता) भी चलता रहा और परिणामस्वरूप श्रेष्ठ कृतियां भी प्रकाश में आयीं. वर्तमान कविता अपनी पुरानी लीकों को छोड़कर सामाजिक संदर्भों व आज के कटु यथार्थ से पूरी तरह जुड़कर प्रस्तुत हो रही है. आज की कविता अपने नये विधान, स्वरूप एवं बिंबों-प्रतीकों द्वारा काव्य विधा को समृद्ध कर रही है. पाठकों की रुचि व ज्ञान में वृद्धि कर रही है.

• आम धारणा है कि आज कविता की लोकप्रियता दिनों दिन घटती जा रही है. यदि यह सच है तो आप इसके लिए किसे जिम्मेदार मानते हैं?

मैं नहीं समझता कि आज कविता की लोकप्रियता घट रही है. ऐसा सोचना बिल्कुल निराधार है कि कविता अपने पाठकों से दूर होती जा रही है या अपनी पहचान खोती जा रही है, बल्कि मेरा तो यह मत है कि समकालीन हालात व मानसिकता को दर्शाने में

-: डॉ. तिलकराज गोस्वामी की कविताएं :-

प्रश्न बनाम उत्तर

वे दिन गये जब बुजुर्ग प्रश्न करते थे
और छोटे उत्तर देते थे
और परिणामस्वरूप कभी डांट-फटकार
तो कभी शाबाशी लेते थे.
अब छोटे बड़ों को प्रश्न बाण मारते हैं
और ये बाण सड़ी दुर्गंध लिये
पुनः उनके हाथों में लौट आते हैं.
ये अनुत्तरित, ये दुर्गंधयुक्त प्रश्न-बाण
छोटे अपने पास क्यों रखेंगे
वे पुनः बिना निशाना साधे
हवा में उछाल देते हैं
जो किसी मनहूस प्रेत की तरह

माहौल में चारों ओर मंडराते हैं
कभी किसी गगनचुंबी प्रासाद के आसपास,
कभी किसी फटेहाल की झुग्गी-झोपड़ी में
कभी किसी रोज़गार दफ़्तर के सामने
तो कभी किसी राशन की दुकान पर
प्रश्न किन्हीं फौलादी सीखचों पर
माथे फोड़ते हैं,
कभी किन्हीं जूतों के सामने पसरते हैं.
इतना सब होने पर भी
प्रश्न प्रश्न ही रहते हैं
कोई उन्हें उत्तरों में परिवर्तित नहीं करता
परिणामतः इन अनुत्तरित प्रश्नों के संदर्भ

दिलोदिमाग में सुलगते रहते हैं,
लावा उत्पन्न करते रहते हैं
और समयांतर में भूचाल लाते हैं
उत्तर जिनसे अपेक्षित हैं
काश वे इतिहास पढ़े होते
तो उन्हें ज्ञात होता
कि विश्व में अधिकांश
क्रांतियों का सूत्रपात
प्रश्नों के उचित उत्तर
न मिलने पर ही हुआ है.

बुनियादें

इस वतन की ऊंची दीवारें
महराबें, दरवाज़े
खिड़कियां व रोशनदान
शान से खड़े हैं
वे सुरभित हवाओं
पावसी फुहारों
और उजली धूप का
आनंद लेते हैं,
समय-समय पर उनके
रूप का श्रृंगार होता है,
पर वे इस सत्य से
अनभिज्ञ होते हैं
कि उनको आधार देनेवाली,
उनको अपनी पीठ पर
उठाये रखनेवाली बुनियादों को
घोर अंधेरे में
कितना कष्ट झेलना पड़ता है,
हमेशा पथरीली क़ब्रों में
बंद रहती हैं
गुमनामी भरा दीर्घ जीवन
जीना पड़ता है उन्हें,
उनकी इस निःस्वार्थ साधना

और बलिदान का मूल्यांकन
कहां करती हैं-
ये दीवारें, दरवाज़ें और खिड़कियां.

हाकिमे वक़्त

जी हां, यह बिल्कुल सही है
कि इतिहास अपने आपको दोहराता है
पर आदमी को भरमाने हेतु
हाकिमें वक़्त
कितने ही सतरंगी हलफ़नामे
हवा में टांगता है,
कितनी ही भारी भरकम कसमें खाता है,
स्वयं को हर तरह भुनाने हेतु
अपनी अनेक तथाकथित
कुर्बानियों के संदर्भ जताता है
और परिणामस्वरूप दर पर्दा
वह सब कुछ पाता है
जो वह चाहता है
और इतिहास का मज़ाक यह होता है
कि आदमी समझ भी नहीं पाता
कि उसके कफ़न की चिंदी-चिंदी
करनेवाला कोई दूसरा नहीं
वही धूर्त हाकिमे वक़्त होता है.

कविता और वह भी विशेष रूप से नयी कविता और उसके समांतर नवगीत भी अपेक्षाकृत अधिक समर्थ सिद्ध हो रहे हैं. गत तीन-चार दशकों में लिखी गयी कविताएं अपने समय के संदर्भों से ज़्यादा मजबूती से जुड़ी हैं. हां इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इस अवधि में अनेक तथाकथित कवियों ने बे सिर-पैर के प्रतीकों व बिंबों तथा जानबूझ कर लायी गयी जटिलताओं से पाठकों को अपनी तथाकथित योग्यता से भरमाने के प्रयास किये हैं. पर समय बड़ा निर्दयी होता है. वह किसी को नहीं बख्शता. वह दूध का दूध व पानी का पानी कर देता है. वास्तव में कविता हर ऐरे-गैरे अथवा कम पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिए नहीं होती. आज की सशक्त कविताओं को वही व्यक्ति अच्छी तरह समझ पाता है, उनका रस ले पाता है जो सुशिक्षित होता है, जिसके पास संवेदनशील हृदय होता है, जो साहित्य को समझने के लिए जिज्ञासु होता है, जिसे स्थितियों का बोध होता है. ज्यों-ज्यों शिक्षा व प्रचार-प्रसार होता जायेगा त्यों-त्यों पाठकों व श्रोताओं में कविता की समझ बढ़ती जायेगी.

● आप तो अनेक राज्यों में जाते-आते रहते हैं. वहां के हालात देख-परख कर आपको हिंदी भाषा का भविष्य कैसा लगता है?

हिंदी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है. पूरे उत्तर भारत में अर्थात पंजाब, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व हरियाणा में हिंदी का खूब प्रचार हो रहा है. उत्तर भारत में उर्दू भाषा बहुत तेज़ी से कम होती जा रही है. जम्मू-कश्मीर जहां की राजभाषा उर्दू है, वहां भी हिंदी का प्रवेश खूब तेज़ी से हो रहा है. अब अधिकांश दुकानों पर लगे साइनबोर्ड आपको हिंदी व अंग्रेजी में लिखे हुए मिलेंगे. वाहनों पर लिखी इबारत भी आपको ज़्यादातर हिंदी में ही लिखी हुई दिखेगी. अब देश के अधिकांश राज्यों में नगर-नगर, मुहल्ले-मुहल्ले में हिंदी-अंग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूल खुल गये हैं. इन स्कूलों के माध्यम से भी अंग्रेजी की अपेक्षा हिंदी का प्रचार-प्रसार अधिक हो रहा है.

डॉ. तिलकराज गोस्वामी

‘आकांक्षा’ ९१ सी/८सी, सर्वोदय नगर,

भरद्वाजपुरम, इलाहाबाद-२११००६

सुभाषचंद्र गांगुली,

संपादक-विमर्श, एस-पंचपुष्प अपार्टमेंट,

४१७- अशोक नगर, इलाहाबाद-२११००१

लघुकथा

चौथा स्तंभ

साबिर हुसैन

आज वह बहुत खुश था. महेश जी ने उसे अपने साप्ताहिक अखबार में काम करने के लिए बुलाया था. रोज ही पत्रकारों के पिटने के समाचारों ने उसे हतोत्साहित न कर प्रोत्साहित ही किया था. पत्रकार उसके लिए सदैव प्रेरणा स्रोत रहे हैं जो दूसरों के लिए स्वयं जोखिम उठाते हैं. पत्रकारिता के लिए उसने ट्रांसपोर्ट की मैनेजरी छोड़ दी जहां उसे अच्छा पैसा मिल रहा था.

‘आ गये राकेश भाई, जरा एक काम करो,’ महेश जी उसे देखते ही बोले.

‘कहिए’, वह धीरे से बोला.

‘यह अखबार के पेज का प्रूफ गोपाल जी के पास ले जाओ, उनको यह न्यूज़ दिखा देना और बता देना कि उनकी ब्रेड में कॉकरोच निकला है, यह न्यूज़ न छपे इसके लिए दो हजार का विज्ञापन दे दें,’ महेश बाबू उसे समझाते हुए बोले.

वह जानता है गोपाल जी अपनी साख बचाने के लिए न्यूज़ की जगह विज्ञापन जरूर छपा लेंगे. उसे लगा चौथे स्तंभ में भी दरारें पड़ गयी हैं.

‘महेशजी, मैं यह बताने आया था, मैं ट्रांसपोर्ट पर ही काम करूंगा,’ कह कर वह तेज़ी से ऑफिस से बाहर निकल गया.

‘अभिव्यक्ति’, पलिया कलां (उ.प्र.)- २६२५०२

गाज़ल

विनय मिश्र

हम बुरे हैं ठीक है तो इन भलों से पूछ लें,

शहर पानी में है कितने तलघरों से पूछ लें.

इस अंधेरे को मिलेगी कुछ न कुछ तो रौशनी,

इक किरन उम्मीद की ले जुगनुओं से पूछ लें.

आइनों की आप करते हैं तरफ़दारी मगर,

आइनों की छोड़ पहले पत्थरों से पूछ लें.

आपको लेना है गर मरहम सियासतदान से,

जख्म ये कैसे मिले हैं बेबसों से पूछ लें.

ज़िंदगी के नाम पर लगते हुए बाज़ार में,

मौत की भी क्रीमते हैं हादिसों से पूछ लें.

बी-१६१, हसन खां मेवाती नगर, अलवर (राज.)-३०१००१



‘भारतीय मुसलमान सिर्फ आतंकवादी और राष्ट्र विरोधी नहीं हैं!’

✍ साबिर हुरैज

आज मुसलमानों के चारों ओर एक लाल घेरा खींच कर उन्हें संदिग्ध समाज के रूप में रेखांकित किया जा रहा है जैसे वह जरायम पेशा समुदाय हो. कुछ लोगों के कुकृत्यों के लिए पूरे मुस्लिम समाज पर उंगली उठाया जा रही है, ऐसा दर्शाया जा रहा है जैसे मुस्लिम सिर्फ आतंकवादी और राष्ट्रविरोधी हैं. कुछ लोगों की पल्स पोलियो खुराक के विरोध में कही गयी बात पूरे मुस्लिम वर्ग पर मढ़ दी गयी, बड़े शहरों की स्थिति तो नहीं जानता लेकिन हमारे नगर की मस्जिद से पोलियो खुराक पिलाने की हमेशा अपील की जाती है.

यह सच है कि मुस्लिम समाज आज भी बहुसंख्य अशिक्षित है, उसे कोई भी भेड़ों की तरह इस्तेमाल कर लेता है. उसकी आर्थिक स्थिति उसे रोजी-रोटी कमाने के अलावा कुछ करने की छूट नहीं देती और कई बार आर्थिक तंगी किसी को भी गलत राह चुनने पर विवश कर देती है. पहले तो अधिकांश जानते ही नहीं कि कहां क्या हो रहा है. अगर घर में टीवी चल रहा है तो उस पर फ़िल्म ही देखी जाती है. अगर नेता मुसलमानों को लुभाने की कोशिश कर रहे हैं तो इसके लिए मुसलमान क्या कर सकता है. आरक्षण आदि से भी ऐसी स्थिति नहीं बनी है कि मुसलमानों की बड़ी संख्या कहीं नौकरियों आदि में आ गयी हो, आज भी वे पहले की तरह विभिन्न कामों के कारीगर हैं या आजीविका हेतु छोटे मोटे

काम कर रहे हैं. वह अभी इतना जागरूक नहीं है कि उसे कब कहां विरोध करना चाहिए. इसका फ़ायदा कुछ लोग उठा कर स्वयं को हाईलाइट करने के लिए जो भी बोल देते हैं उसे पूरे मुस्लिम समाज की आवाज़ मान ली जाती है जबकि अधिकांश जानते ही नहीं कि कौन क्या कह रहा है.

रही बात आतंकवादियों की वे चाहे माओवादी, नक्सलवादी या मुस्लिम नामों के संगठन के हों. उन पर काबू पाना शासन-प्रशासन का काम है. वह कितनी सख्ती करती है इससे किसी को कोई लेना-देना नहीं. बस इतना ही कि किसी के अपराध के लिए निर्दोषों का संहार न हो.

वे अधिकारी-कर्मचारी जिन पर आतंकी गतिविधियां रोकने का दायित्व है. वे गड्डी पाकर आंखें बंद रखते हैं लेकिन जब कुछ घटित हो जाता है तब हाय-तौबा मचती है.

नेपाल सीमा पर अधिकारी तस्करों से हिस्सा लेकर माल आने देते हैं वह चाहे हथियार ही क्यों न हो. यदि पैसा फेंककर अपराधी सीना ताने घूमते हैं तो कोई क्या कर सकता है. मेरा कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि अपराधी सिर्फ अपराधी होता है उससे उसके समाज को जोड़ना उचित नहीं.

✍ ‘अभिव्यक्ति’,

पलिया कलां (उ.प्र.)- २६२९०२

अब तक ११००० प्रतियां प्रकाशित हो चुकी हैं

घर बचाओ, देश बचाओ
घर बचेगा तो समाज बचेगा,
समाज बचेगा तो देश बचेगा।

कवि, व्यंग्यकार और वक्ता अक्षय जैन की चर्चित पुस्तिका ‘घर बचाओ-देश बचाओ’ मंगवाये। लिफ़ाफ़े में दस रुपये नकद या एक रुपये वाले दस डाक टिकट भेजें। अविस्मरणीय संगीत और ओजस्वी गीतों की म्यूजिक ऑडियो सीडी के लिए ५० रुपये + २५ रुपये रजि. डाक व्यय ‘दाल-रोटी’ के नाम भेजें।

संपर्क : ‘दाल-रोटी’

१३, रशमन अपार्टमेंट, उपासनी हॉस्पिटल के ऊपर, एस.एल.रोड, मुलुंड (पश्चिम), मुंबई-४०० ०८०.

फोन : ०२२-२५६०१५८८ (सुबह १० से १ बजे)



पुस्तक-समीक्षा

ग्रामीण परिवेश की कहानियां

✍ देवदत्त वाजपेयी

लोककथा की द्रोपदी (क.सं.) : डॉ. देवेन्द्र सिंह

प्रकाशक : अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर,

मुजफ्फरपुर-८९२००२

मूल्य : १२५ रुपये

“लोककथा की द्रोपदी” देवेन्द्र सिंह द्वारा लिखित अभिधा प्रकाशन का दस कहानियों का संकलन है जिसमें आरंभ आमुख प्रतिनिधि कहानी ‘लोककथा की द्रोपदी’ से होता है और अंत एक लघुकथा ‘आदिम राग’ के रूप में होता है। वस्तुतः यह संकलन एक पुष्पगुच्छ है जिसमें ग्रामगंधी परिवेश से जुड़ी विभिन्न समस्याएं जैसे भ्रष्टाचार में लिप्त लालफीताशाही, गांधीवाद के सन्मार्ग पर चलने की कठिनाइयां, ग्रामीण जीवन की विषमताएं, लिंगभेद जनित भ्रूणहत्या का मुद्दा, वार्धक्य का एकाकी जीवन का समावेश है, इन समस्याओं का अत्यंत रोचक एवं सकारात्मक उपसंहार भी है। इन कहानियों को पढ़कर ‘प्रेमचंद’ याद आ जायेंगे तो दूसरी ओर बिहार में बोली जाने वाली भाषा एवं शब्दों के यदाकदा प्रयोग से कहानियों में एक ताजगी एवं ‘ओरिजिनलिटी’ पाठक अवश्य पायेंगे। देवेन्द्र सिंह की यह लेखन विधा अन्य कहानीकारों की लेखन विधा से भिन्न एवं विशिष्ट है। लेखक द्वारा पूर्व रचित ‘तिरहुतिया’, ‘भोज’, ‘आमुख कथा’ ‘पोसपूत’, ‘यातनागृह’ रचनाएं/ग्रंथ कथा संकलन, उपन्यास एवं काव्य संग्रह हैं। ‘लोककथा की द्रोपदी’ में समाहित दस कहानियों की भाषा में अजीब सौंधापन है जो संबंधों की बारीकियों को उजागर करता है। इन कहानियों में लोक प्रचलित कहावतें तो हैं ही। साथ में बड़ी सरलता-सहजता से प्रयोग किये गये वाक्यांश भी हैं जो अत्यंत प्रेरक एवं सनातन है।

‘लोककथा की द्रोपदी’ कहानी का नायक राघवबाबा स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं और गांधीजी की विचारधारा में अटूट विश्वास रखते हैं। ‘सेनानी पेंशन’ लेना आत्मा को बेच देना है उनके लिए। अतः उन्हें सेनानी पेंशन लेना स्वीकार नहीं। परिवार जनों का विरोध झेलते हुए अनादर सहा किंतु आत्मसम्मान पर आंच न आने दी। ‘जंगलों और जेलों में कटी जवानी का मोल बारह सौ टका? आजादी के लिए बहोये गये लहू की कीमत बाहर सौ टका?’ / ‘पेंशन देकर सरकार ने सेनानियों को अपने जैसा

भ्रष्ट और सुविधा भोगी बना दिया है.’ / ‘जोदि तोमार डाक शुने के ऊना आशे, तबे एकला चलो रे!’ / ‘पैसे का तो ऐसा लोभी कि गुह पर धरा पैसा जीभ से उठा ले’ / ‘यदि बेटा जांघ पर हग दे तो जांघ नहीं काट देते हैं’ / ‘लोगों का यह हाल कि बेटे पटककर छाती पर चढ़ जाते हैं और जीवन भर की कमाई का हिसाब मांगते हैं’ / ‘कलिकाल में नहीं आयेंगे कृष्ण’ / ‘आज तो किसी टिटिहिया को ही हिम्मत करके टांगें उठानी होगी’, आदि वाक्य पाठकों को चिंतन करने के लिए उदात्त पटल पर अवश्य ले जायेंगे।

दूसरी कहानी ‘सूली पर टंगा सत्य’ शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार और घूसखोरी का दस्तावेज है। महात्मा गांधी के सिद्धांतों पर अमल करने वाला अध्यापक इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ‘यह निर्दोषों के मार खाने का समय है, सत्य के बार-बार पराजित होने का समय है.’ - जो सत्य का आग्रह लेकर आया है इसी सूली पर लटकाया गया, इतिहास इस सच का साक्षी है.’ इस कहानी में - ‘आदमी को समय के साथ चलना चाहिए,’ / ‘अधिकार खोकर बैठ जाना महा दुष्कर्म है’ / ‘बेइज्जत ज़िंदगी जीने से तो लड़कर मर जाना श्रेयस्कर है.’ आदि वाक्य मूल्यवान एवं सनातन हैं।

‘अपने लोगों के बीच’ का चरित्र सत्य, सरल, देश के प्रति न्यौछावर रहा किंतु परिवार समाज में उपेक्षित जीवन जिया। महुआ बाबा जैसे वृद्ध के आश्वासन-प्रोत्साहन से जीवन के प्रति स्नेह पुनः जागृत हो गया। ‘वैसे तो सत्तर छूते आदमी को’ जनम का घाट बहुत दूर छूट गया लगता ही है और मरन का कगार हर पल करीब आता साफ झलकता है.’ / ‘अपराधियों का कोई धर्म नहीं होता’ आदि वाक्यांश पाठक के मन को कुरेदने के लिए पर्याप्त हैं।

‘सलाखों के पार’ एक ऐसी मेधा संपन्न बेटी की कहानी है जिसे उसका पिता शीघ्र विवाह कर अपने दायित्व से च्युत हो जाने की जल्दी में है। किंतु उस बेटी का कहना है कि, “मैं लता की तरह किसी पुरुष के सहारे जीवन जीने को राजी नहीं, पति के रूप में मुझे कोई मजबूत तना नहीं, जीवन भर का साया चाहिए.” इस कहानी का सार है। ‘मां-बाप, परिवार, समाज अपना कर्तव्य भर कर दें- पालपोस कर, पढ़ा-लिखा कर तैयार कर दें बच्चों को बस! शादी उनका अपना मामला है, कब करेंगे, किससे करेंगे, करेंगे या नहीं करेंगे, यह फैसला उनका होगा.’

‘संग्राम’ कहानी एक ऐसी प्रबुद्ध ग्रहणी की कथा है जो कहती है - कौन सी ऐसी मां होगी जिसे एक बेटे की चाह न होगी, वह चाह मेरे अंदर भी है मगर बेटी के जीवन का मोल

चुकाकर मुझे बेटा नहीं चाहिए.’ लेखक भ्रूणहत्या का मार्मिक मुद्दा उठाकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि बेटा एवं बेटी में कोई अंतर नहीं. ‘बेटा रहता है अमेरिका में और यहां मां-बाप की लाश प्रतीक्षा करती रहती है. क्रियाकर्म तक नहीं आ पाते बेटे.’

‘जग बेगाना’ कहानी में वृद्ध अपने परिवार के बीच होते हुए एकाकी और बेघर महसूस करता है किंतु कौटुंबिक कलह का अंत सकारात्मक है, बूढ़े बाबा के भोजन का समुचित प्रबंध होता है. जीवन का गंभीर सत्य लेखक ने कबीर पंथी भाषा में बड़ी सरलता-सहजता से किया है. ‘हम लोग नाथकंठ के बैल हैं, भाय! अब हम लोगों के लिए एक ही काम बचा है - चुपचाप उस खप्पड़वाली का ध्यान करें और बाट जोहें लेवइया का कि वह आयेगा और हमें ससुराल ले जायेगा.’

‘योग्य उम्मीदवार’ में शिक्षा एवं शासनतंत्र में व्याप्त अनाचार को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया गया है.

‘कस्बे में सेमिनार’ कहानी में शहर कहे जाने वाले कस्बे में एक साहित्यिक सामाजिक संस्था और उसके सभासद कार्यकर्ताओं का सेमिनार के आयोजन के लिए निश्चल उत्साह और सेमिनार में आमंत्रित गणमान्य अतिथि का सुरा प्रेम लेखक ने प्रस्तुत किया है! ... “मगर यहां तो बोलना है न! मैं बिना पिये न लिख सकता हूं, और बोल तो कतई नहीं सकता.”.... “आप राजधानी के साहित्यकार हैं, तो एक आध पेंग लेने से आपकी सारी तकलीफ़ फौरन भाग जायेगी.” कहानीकार ने राजधानी के ऐसे ही साहित्यकार की बखिया उधेड़ दी है.

‘है अमा निशा’ एक “‘एंग्री ओल्ड मैन’ के माध्यम से विश्वविद्यालय के प्रशासन में व्याप्त अध्यापकों के प्रति बेरुखी-लापरवाही का ललित प्रस्तुतीकरण किया गया है. ... “ना उम्मीदी में भी एक उम्मीद बची रह जाती है. वही तो जिलाती है/” ... “बुढ़ापे में आकर लगता है कि एक बार फिर बेरोज़गार हो गये/” “राधा मोहन का हृदय उमड़ पड़ा, जी में आया, पेड़ को बाहों में भरकर उसके तने से गाल सटा आंखें मूद ले/” “दोनों ओर से नेह धाराएं बह कर एक दूसरे में प्रवाहित हो रही थीं, राधामोहन को लगा मानो पेड़ उसका हालचाल पूछ रहा हो कि इतने दिन और क्या करता रहा...” मार्मिक वाक्य पाठक के अंतस को स्पर्श करने के लिए पर्याप्त हैं.

“आदिम राग” लघुकथा है. बयालीस वर्ष के सुदीर्घ वैवाहिक जीवन के बावजूद पति-पत्नी के बीच दरार! “भूलों का सिलसिला ही जीवन है/” “आदमी उसी को व्यक्त करता है जो उसका मूल स्वभाव होता है.” “चांटा” “उतर आये न अपनी

आदिम नंगई पर!” वस्तुतः यह लघुकथा एक उपन्यास का लघुरूप सा है - गागर में सागर.

“लोककथा की द्रोपदी” में प्रायः सभी कहानियां सिनेचित्रण के अनुकूल हैं. यह अनूठी पुस्तक, कथा संकलन पठनीय एवं संग्रहणीय है.

२०२/४, सागर दर्शन, सेक्टर १८,
नेरूल (पश्चिम), नवी मुंबई - ४०० ७०६

अमलतासी-गंध वाले गीत

जय चक्रवर्ती

सांस-सांस वृंदावन (गीतसंग्रह) : श्रीमती मधुप्रसाद

प्रकाशक : श्री प्रकाशन, ३२ सरकार लेन, कोलकाता-७००००७

मूल्य : १२५ रुपये

सौंदर्य, माधुर्य और कोमलता ‘गीत’ की शाश्वत प्रकृति है. आदिकाल से ही हमारे कवियों ने अपने गीतों के माध्यम से जीवन और जगत् के सारे सौंदर्य और सौष्ठव को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है. यह और बात है कि गीत के इस गुण को ‘लिजलिजी भावुकता’ कहकर तमाम आलोचकों ने इसे अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाया और नयी कविता के बरक्स ‘गीत’ को खारिज करने का प्रयास किया. बहरहाल, हमारा विषय यह नहीं है. हम तो गीत के उस स्वरूप की बात कर रहे हैं, जो मनुष्य की आदिम-प्रवृत्तियों में समाया है और जिसे उसकी ‘रागात्मक-अनुभूतियों का नैसर्गिक-प्रस्फुटन’ कहा जाता है. हिंदी की समकालीन कवयित्रियों में मधु प्रसाद का नाम जो लोग जानते हैं, वे यह भी जानते हैं कि यह वह नाम है जो गीत के लालित्य और माधुर्य को न सिर्फ अपनी लेखनी, अपितु अपनी सांस-सांस पर सजाये हुए है. उनके पूर्व प्रकाशित गीत संग्रह ‘आंगन भर आकाश’ और सद्यः प्रकाशित गीत संग्रह ‘सांस-सांस वृंदावन’ से गुजरते हुए कोई भी सहृदय संवेदनशील व्यक्ति मेरी बात की तसदीक कर सकता है.

फिलहाल सांस-सांग वृंदावन मेरी आंखों के सामने है, मेरी आंखों में है. इस गीत संग्रह में कवयित्री के कुल १०२ गीत संग्रहीत हैं. इन गीतों के बारे में यदि एक वाक्य में अपनी राय देनी हो, तो बिना एक पल गंवाये, मैं यह कह सकता हूं कि इस गीत संग्रह में कवयित्री ने स्वयं को संपूर्ण रूप से अभिव्यक्त किया है. व्यक्तिगत रूप से जो लोग मधुजी से परिचित हैं, वे उनके स्नेहिल, आत्मीय, निश्चल और मृदुल व्यक्तित्व से निश्चय ही परिचित होंगे. और

कहना न होगा कि उनका यही व्यक्तित्व उनके इन गीतों में ज्यों का त्यों उतर आया है।

हिंदी के अत्यंत आदरणीय और वरेण्यकवि डॉ. किशोर काबरा को समर्पित यह गीत संग्रह हर कोण से श्रीमती मधु प्रसाद की गीत निष्ठा को प्रमाणित करता है। गीत के प्रति उनका समर्पण संपूर्ण है, इसमें कोई अंगर-मगर की गुंजाइश नहीं है। शायद यही कारण है कि उन्होंने इस कृति का नाम 'सांस-सांस वृंदावन' दिया है। वृंदावन जो प्रेम, प्यार, मनुहार के पवित्रतम अर्थों का प्रतीक है, उन सारे अर्थों को कवयित्री अपनी सांस-सांग में समा लेना चाहती है। वे कहती हैं :-

**“अमलतासी गंध पाकर / दर्पणों पर उभर आयी .
स्वप्न-रथ पर जो चढ़ी थी / याद लेकर रोशनाई .
चांदनी को पत्र लिख दूं/ हैं मिलन की योजनाएं .”**

इन गीतों में प्रकृति और प्रेम के जैसे और जितने चित्र उपस्थित हैं, उनसे कवयित्री की प्रतिबद्धता न सिर्फ गीतों के प्रति अपितु उनके व्यक्तित्व की कोमलता के प्रति भी व्यक्त होती है। यह बात बार-बार दोहराये जाने के बावजूद ज्यों की त्यों महत्वपूर्ण है। संग्रह के किसी भी गीत को उठाकर देख लीजिए, जैसे बिंब और प्रतीक इन गीतों में उपस्थित हैं, वैसे बहुत कम गीतकारों के यहां हैं। एक उदाहरण देखें :-

**“सरसों की क्यारी में यौवन गदराया है,
रसवती पुरवा ने चुंबन भिजवाया है।**

**मौसम की पांडुलिपि पढ़ता बनजारा है,
प्रियतम की बाहों में खुलता गलियारा है,
भिनसारा चौखट को न्योता दे आया है .”**

कविता के बारे में कहा जात है कि वह सच की प्रवक्ता होती है। इसीलिए अंधेरे के खिलाफ मशाल की तरह वह मानवता को राह दिखलाती है। हमारा समय अत्यंत विडंबनाओं, त्रासदियों, दहशतों का समय है। भ्रष्टाचार, अनाचार, वैषम्य, विद्वेष, षड़यंत्र के अंधेरे हमारे समस्त जीवन मूल्यों पर कालिमा का आवरण डाले हुए हैं। ऐसे में एक संवेदनशील रचनाकार कैसे चुप रह सकता है। वह अंधेरे की ओर मुखातिब होकर पूरी ताकत से कह उठता है:-

**“लगा हुआ है तम का पहरा, मेरे डर के आंगन में,
कैसे मन का दीप जलाऊं, अभिशापित जीवन में।**

**मानवता खाती मानव को, लाज बिक हाटों में,
खून बह रहा पानी जैसा, धर्म फसा कांटों में .”**

सिर्फ इतना ही नहीं, कवयित्री इस अंधकार को चीरने का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

**“ज्ञान ध्यान हो, आराधन हो, अंबर का मन झूमे,
क्षमा, दया, करुणा की सरिता, धरती का तन चूमे”**

कवि की चिंता सिर्फ उसकी अपनी चिंता नहीं होती। वह अपने दिल में पूरी मानवता की पीड़ा, चिंता लेकर जीता है और इस पीड़ा से मुक्त होने के रास्ते तलाशता है। मधु प्रसाद के गीत का एक अंश दृष्टव्य है।

**“गुलमोहर सी जिंदगी को, नीम जैसा क्यों बनायें?
धूप के सम्मुख हंसे हम, आंधियों को सर चढ़ायें
छाह में अमराइयों की, एक दूजे को टटोलें .”**

संग्रह की पूर्ण पीठिका (पुरोवाक्) में श्रेष्ठ किशोर काबरा कहते हैं - “समकालीन काव्यजगत के किसी खेमे, मठ या डेरे से संबंधित न होकर भी मन नवगीत के सभी तत्वों को जीवन दर्शन, आत्मनिष्ठा, व्यक्तिबोध, प्रीति, परिसंचय, आंचलिकता, सम-कालीनता, सार्वकालिका और लोकभोग्यता को यह कवयित्री समझने का प्रयत्न कर रही है। गीत और नवगीत के सूक्ष्म अंतर को भी यह कवयित्री अंतर्मन से बूझने का साहस कर रही है।” सरल शब्दों में गूढ़ से गूढ़ भावानुभूतियों को अत्यंत सहज काव्य-भाषा से अलंकृत कर देना मधु प्रसाद को अलग से रेखांकित किये जाने योग्य बनाता है। उनकी रचनाओं में जैसे उपमान और प्राकृतिक उपादान यत्र-तत्र-सर्वत्र उपस्थित हैं, वह उनकी मौलिकता की गवाही तो देते ही हैं, उनके गीतों को ताजगी भी प्रदान करते हैं। यह आर्ट, यह वैशिष्ट्य उनके परिपक्व जीवनानुभवों से संपृक्त सृजन कर्म की निरंतरता का परिणाम है। ‘परिजात सी जिजी-विषाएं’, ‘मेघवर्णी नेह’, ‘अमलतासी गंध’, ‘मौसम की पांडुलिपि’, ‘फागुन सी देह’, ‘सिर फिरी मादक घटाएं’, ‘मोरपंखिया रातें’, ‘दृगजल की लोरी’, ‘संयम की घाटी’, ‘हरकारा मधुमास’, ‘अलकों की चौखट’, ‘पर्णकुटी सांसों की’ आदि प्रयोग सांस-सास वृंदावन के गीतों को नवगीत के धरातल पर पूरे अधिकार और सम्मान के साथ प्रतिष्ठित करते हैं। यत्र-तत्र पौराणिक मिथकों के प्रयोग ने इन गीतों को प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से प्रभविष्णु बना दिया है। सृजन-भावबोध, संवेदना और संप्रेषणीयता ये तीनों तत्व ‘सांस-सास वृंदावन’ के गीतों में अपने सर्जक के व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया बनकर पाठक के समक्ष उपस्थित होते हैं।

आशा की जानी चाहिए कि ‘सांस-सांग वृंदावन’ के ये गीत सहृदय पाठकों द्वारा भरपूर सराहे जायेंगे और कृति हिंदी काव्य-संसार में अपनी पहचान बनाने में सफल होगी।

✉ एम १/१४९, जवाहर विहार,
रायबरेली - २२९०१० (उ.प्र.)

सामाजिक कथा शिल्प की अभिव्यक्ति

डॉ. अनिल गहलौत

‘एक और गांधी’ (कथा संग्रह) : मदन मोहन ‘उपेंद्र’

प्रकाशक : एस कुमार एंड कंपनी, नयी दिल्ली ११०००२.

मूल्य : १०० रुपये

आज के लेखन में स्वतंत्रतापूर्व के लेखन से अति भिन्नता है. आज कहानी प्रतिस्पर्धा की शिकार नहीं है अपितु संपूर्ण कथा साहित्य लगातार नूतन प्रयोग एवं प्रगतिशील रचनाधर्मिता का मार्गदर्शन निभा रहा है. वर्तमान कहानी लेखन प्रेमचंद एवं प्रसाद से भी प्रभावित है और रेणु, कमलेश्वर से भी प्रोत्साहित है.

जहां तक मदन मोहन उपेंद्र के चर्चित कहानी संग्रह ‘एक और गांधी’ का प्रश्न है, उसमें कहानीकार की ग्यारह कहानियां एवं चालीस लघुकथाएं संग्रहीत हैं, कहानियों में पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सरोकारों को बड़ी मार्मिकता से उकेरा गया है. जहां, ‘रंभो बुआ’ कहानी में गांव को बड़ी बूढ़ी के अपनत्व एवं महत्व को दर्शाया गया है, वहीं ‘बात अनकही’ में ‘पिताकी वापसी’, ‘बुझ गयी मशाल’, कहानियों में बिखरते पारिवारिक रिश्तों, टूटते सामूहिक परिवारों की त्रासदी को बड़ी मार्मिकता से व्याख्यायित किया गया है.

इतना ही नहीं एक और कहानी ‘बहराहु आखुदा’ में बढ़ते

ध्वनि प्रदूषण पर करारा व्यंग्य किया गया है. ‘शहादत रंग लायी’ में कारगिल युद्ध के शहीदों को याद करके नयी पीढ़ी में युद्ध एवं सेना में जाने के लिए उत्साहित किया गया है. यानी कि प्रायः सभी कहानियां उद्देश्यपरक एवं शिक्षाप्रद भी हैं और नयी स्फूर्ति से पाठक को झंकृत करने में सक्षम हैं.

इसी प्रकार लघुकथाएं भी संक्षिप्त होते हुए भी बड़े सरोकारों को पूर्ण करती हैं ‘डाकू आये थे’, ‘त्यागमूर्ति’, ‘देवता’, ‘पैसा माईबाप’, ‘जब मूर्ति बोले चमत्कार’, ‘सभ्य कौन’, ‘उम्र’ आदि लघुकथाएं छोटे कैनवास की बड़ी सोच को उजागर करने में सक्षम हैं.

‘ईश्वर की हंसी’ लघुकथा का आयाम देखिए. जब महात्मा से पूछा ईश्वर कब हंसता है, तो महात्मा ने बताया कि जब आदमी अपने अहम में कहता है कि ईश्वर कुछ नहीं, सब कुछ मैं हूं, तो ईश्वर ठहाका लगाकर हंसता है. इसी प्रकार ‘उम्र’ लघुकथा में जब प्यासा प्याऊवाले बूढ़े से पूछता है बाबा आपकी उम्र कितनी है और जवाब मिलता है चार वर्ष सिर्फ, जब से पानी पिला रहा हूं तो प्यासा दंग रह जाता है. इस प्रकार लघुकथाओं में भी एक दर्शन, एक निष्ठा, एक जीवनी सार्थकता निहित है.

समग्रतः ‘एक और गांधी’ कथा-संग्रह प्रभावी कथा रचनाओं का प्रभावी गुलदस्ता है. साहित्य-जगत में प्रभावी पहचान बनायेगा.

प्रोफेसर, के.आर.कॉलेज, मथुरा

: प्राप्ति-स्वीकार :

भगवान ने कहा था (व्यंग्य) : डॉ. सूर्यबाला, ग्रंथ अकादमी, १६५९ पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली ११०००२, मू. १५०/-

अधूरा सच (क.सं.) : डॉ. रमाकांत क्षितिज, शिवा प्रकाशन, लेक रोड, भांडुप (प.), मुंबई - ४०० ०७८, मू. १००/-

मुड़ते हुए मोड़ (क.सं.) : रजनी सिंह, अमृत प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली - ११० ०३२, मू. - १२५/-

पतझड़ के बाद (क.सं.) : परमानंद ‘अधीर’, श्री अंगिरा शोध संस्थान, जींद (हरि.) - १२६ १०२, मू. - ८०/-

परिवर्तन (क.सं.) : मंजु गुप्ता, प्रभात बुकसेंटर, बी-२/१०४ शीतल पैलेस, मीरा रोड (पू.), मुंबई - ४०१ १०७ मूल्य - १५०/-

एक और गांधी (क.सं.) : मदन मोहन ‘उपेंद्र’, एस.कुमार एंड कं., ३६१३ दरियागंज, नयी दिल्ली - ११० ००२ मू. - १००/-

साबरमती का दर्द (का.सं.) : डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा ‘मृदुल’, हिंदुस्तान पब्लिकेशन, लखनऊ (उ.प्र.). मू. - १५०/-

कब लौटेगा नदी के उस पार गया आदमी (क.सं.) : भोलानाथ कुशवाह, अंतिका प्रकाशन, सी-५६/यूजीएफ-४, शालीगार गार्डन, गाज़ियाबाद - २०१ ००५ मू. - २२५/-

गीत गंगा का नया भगीरथ (गद्य) : मधुकर गौड़, नमन प्रकाशन, मुंबई, मू. - २००/-

अक्षय शांति की खोज (का.सं.) : अक्षय गोजा, उद्योग नगर प्रकाशन, ६९५ न्यू कोट गांव, जी.टी.रोड, गाज़ियाबाद (उ.प्र.) मू.-१००/-

सपनों का मौसम (काव्य) : श्री हर्ष, सामाजिक प्रकाशन, हर्ष भवन, बेणीसर बारी के बाहर, बीकानेर - ३३४ ००५ मू. - १५०/-

गुलदस्ता (गाज़ल संग्रह) : ऋषिवंश, डायमंड पॉकेट बुक्स, एक्स-३०, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-२, नयी दिल्ली-११० ०२० मू.-७५/-

कोनेवाला कमरा

✍ राही शंकर

मकान बनने के बाद, बना एक कोने वाला कमरा,
सोचा था ऑफिस या स्टडी बनायेंगे
ऐसा नहीं हो सका,
वह कमरा पुरानी चीजों के लिए, रखा गया.
उसमें एक पुराना ट्रंक, पुरानी किताबें,
पुराने फर्नीचर, पत्रिकाएं,
जो काफी कोशिश के बाद भी घरवाले बेच नहीं पाये.
अब उस कमरे से जुड़ने लगा था,
मेरा पुराना अस्तित्व, मेरा अकेला पन,
मेरी भीतर की मृत संवेदनाएं.
ये सब भी इसी कोने वाले कमरे का हिस्सा बनीं,
मैं भी पुराना, उन्हीं चीजों के बीच सोता हूं, सोचता हूं
क्यों बनते हैं ऐसे कमरे,
जो वजूदहीन हैं, नफ़रत पनपाते हैं
दूरियां बढ़ाते हैं,
और आदमी अलग हो जाता है
अपने जीवन से भी, ऐसे ही कोने वाले कमरों में
क्यों बनते हैं ऐसे कमरे...

✍ द्वारा शॉपी सेंटर, निकट स्टेट बैंक,
बूटी मोड़, रांची ८३४००९

गज़ल

✍ विनय मिश्र

दर्द का अहसास दिल में इस क्रंदर बढ़ने लगा,
गमज़दा को इंतिहाई का मज़ा मिलने लगा.
जबकि मेले में तबाही का मचा कोहराम था,
एक बच्चा बांसुरी की ज़िद यहां करने लगा.
जो अंधेरों से डरे वो रोशनी किस काम की,
फिक्र में अपने सवालों का धुआं उठने लगा.
आने वाली आहटें ख़ामोश होकर रह गयीं,
कान देकर दस्तकों पर वक्रत क्या सुनने लगा.
ज़िंदगी के मायने बदले नज़र आने लगे,
यूं दरिंदों के शहर में आदमी रहने लगा.
क्या खुदा पर कोई बिजली गिरने वाली है बता,
मज़हबी उन्माद का अब ज्वार जो चढ़ने लगा.
एक सूरज ही उजाले के लिए कुछ कम न था,
दूसरा भी शायरी के रूप में तपने लगा.

✍ बी-१६१. हसन खां मेवाती नगर,
अलवर (राज.)-३०१००१

गज़लें

✍ शकूर अनवर

गाती हुई कोयल न कोई मोर मिलेगा,
शहरों में मशीनों का फ़क़त शोर मिलेगा.
आसान नहीं है तेरा उस पार पहुंचना,
मझधार में तूफ़ान का बड़ा ज़ोर मिलेगा.
ऐसे ही निगाहों को झुकाया नहीं करते,
जब दिल को टटोलोगे तो इक चोर मिलेगा.
'ग़ालिब' हो कि 'तुलसी' हो सभी हुस्न के आगे,
जिसको भी यहां देखिए कमज़ोर मिलेगा.
बैठे से तो दुख-दर्द कभी ख़त्म न होंगे,
हिम्मत जो रखोगे तो कहीं छोर मिलेगा.
तपते हुए सहाराओं में क्या पाओगे 'अनवर',
पानी तो मेरे यार कहीं और मिलेगा.

कैसी अपार भीड़ है पनघट के आसपास,
क्या कोई नाव डूब गयी तट के आसपास.
आ जाय किस घड़ी यहां संदेश मौत का,
हम जी रहे हैं देखिए मरघट के आसपास.
कब तक करेंगे चौकसी जीवन की हम यहां,
कब तक धरेंगे कान को आहट के आसपास.
जब से भरे बाज़ार में बारात इक लुटी,
दुल्हन को डर सा लगता है घूंघट के आसपास.
मन में पवित्र प्रेम की इक कामना लिये,
सदियां गुज़र गयीं तेरी चौखट के आसपास.
तैयार हो भी जाइए अब युद्ध के लिए,
'अनवर' हमारा देश है संकट के आसपास.

✍ शमीम मंजिल, सेठानी चौक, श्रीपुरा, कोटा- ६ (राज.)

याद नहीं आता

देवेंद्र रिणवा

जैसे याद नहीं आता,
कि कब पहनी थी
अपनी सबसे प्यारी कमीज़
आखिरी बार
कि क्या हुआ उसका हथ?
सायकल पोंछने का कपड़ा बनी
छीजती रही मसौता बन
किसी चौके में,
कि टंगी हुई है
किसी काकभगोड़े की
खपत्तियों पर.
याद यह भी
नहीं आता,
कि पसीने में सनी
कमीज़ की तरह
कई काम भी
गर्द फांक रहे हैं,
किसी कोने में.

२०१/१, प्रिकांको कालोनी, नंदनी दूध भंडार
के ऊपर, इंदौर - ४५२००९

गज़ल

प्रो. भागवत प्रल्हाद मिश्र 'नियाज़'

राज़ पूछोगे तो गौहर^१, सा बिखर जाऊंगा,
टूट जाऊंगा मगर हाथ नहीं आऊंगा.
मेरे जज़्बात को मानिंदे हिना^२ पिसने दो,
सुख रई न सही आज तो कल लाऊंगा.
किसमें हिम्मत है मेरे दर्द को छूकर देखे,
मैं वो आतिश^३ हूँ कि पत्थर को भी पिघलाऊंगा.
क्या समझता है वो हस्ती को मिटा देगा मेरी,
मैं वो दाना हूँ जो मर मर के भी उग आऊंगा.
जानता हूँ मैं ज़मीन की हक़ीक़त को नियाज़,
सोचते क्या हैं मैं वादों से बहल जाऊंगा.
^१ मोती, ^२ मेहंदी के समान, ^३ आग.

एफ.एफ.४, बी ब्लॉक, सनपाँवर फ्लैटस,
गुरुकुल रोड, अहमदाबाद- ३८००५२

गज़ल

केशव शरण

यूं तो दुनिया ही कम जगह में है,
कुछ भी रक्खा नहीं कलह में है.
हाय-तौबा ही, हाय-तौबा ही,
आपसी हार या फ़तह में है.
तू समझता है दिल को नाप लिया,
जबकि ऊपर की ही सतह में है.
प्रेम का मर्म तब पता चलता,
जिस घड़ी आत्मा विरह में है.
फिर न दिनभर कहीं मिलेगी जो,
मस्त, ठंडी हवा सुबह में है.

एस २/५६४ सिकरौल, वाराणसी- २२१००२

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पीन कोड सहित साफ-साफ लिखें. मनी ऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

कथाबिंब / जनवरी-मार्च २००८ ॥ ४८ ॥

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका
(१९७९ से निरंतर प्रकाशित)

विज्ञापन दरें एवं आकार संबंधी जानकारी

पत्रिका-आकार : २४ सेंमी X १९ सेंमी छपाई का क्षेत्रफल : २१ सेंमी X १६ सेंमी

स्थान	दर	स्थान	दर
पिछला आवरण	: १०००० रु.	पूरा पृष्ठ	: ३००० रु.
दूसरा/तीसरा आवरण/ भीतरी रंगी पृष्ठ	: ५००० रु.	आधा पृष्ठ	: २००० रु.

पैनल विज्ञापन (एक पृष्ठ का १/६ भाग) : ७५० रु.

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक, 'कथाबिंब',
ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन कारी रोड, देवनार, मुंबई- ४०० ०८८.

निवेदन

रचनाकारों से

'कथाबिंब' एक कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाओं, कविता, गीत, गज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.
२. रचनाएं कागज के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों अथवा टंकित करवा कर भेजें.
३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा अवश्य साथ रखें. अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा.
४. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है, अन्य रचनाओं की स्वीकृति या अस्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, गज़ल आदि) भेजें.

ग्राहकों/सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनीकरण करा लें. नये सदस्यों/ग्राहकों को शुल्क प्राप्त होने की अलग से सूचना भेजना संभव नहीं है. यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.

“कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२००८”

“कथाबिंब” के प्रकाशन का यह ३०वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २००७ के “कथाबिंब” के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं “कथाबिंब” की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/परिचित को सदस्यता की भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु.):

● **बदमाश आदमी** - राकेश कुमार सिंह

: श्रेष्ठ कहानी (७५० रु.):

● **पांचवां बूढ़ा** - कुंवर प्रेमिल ● **मां की बेटी नयनताया** - डॉ. निरुपमा राय

: उत्तम कहानी (५०० रु.):

● **पहली थाली** - डॉ. देवेंद्र सिंह ● **राजा सारंगा...** - शिशिर कुमार शर्मा

● **कोल्हू का बैल** - रजनीश राय ● **भवानी का ब्याह** - चंद्रमोहन प्रधान

● **रही** - गोविंद उपाध्याय

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत “कथाबिंब” त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. प्रकाशन का स्थान : आर्ट होम, शांताराम सालुंके मार्ग,
घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३.
२. प्रकाशन की आवृत्ति : त्रैमासिक
३. मुद्रक का नाम : मंजुश्री
४. राष्ट्रीयता : भारतीय
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता : उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर
वाले भागीदारों का नाम व पता : स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री

मैं, मंजुश्री घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - मंजुश्री)



T. A. CORPORATION

8. Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai-400 071

Ph. : (off): + 91-22-25223613/55974515 • Fax : + 91-22-25223631

Email: tac@vsnl.com • Web : www.chemicalsandinstruments.com

-:Offers:-

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- BIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRAGE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch Gujarat,

Ph.: 02646-272332

email: response@prabhatchemicals.com

website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of:

- Sigma, aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A.)**
- Riedel (Switzerland)**
- Merch (GDR)**
- Lancaster (UK)**
- Strem (UK)**

समाचार-पत्रों से ...

स्पेक्ट्रोस्कोपी अध्ययनों से परमाणुओं और अणुओं के अंदर की जानकारी मिलती है

इलाहाबाद, १५ दिसंबर : स्पेक्ट्रोस्कोपी अध्ययनों से परमाणु व अणुओं के अंदर की जानकारी मिलती है, कई नये तत्वों की खोज में भी इससे मदद मिली है. इलाहाबाद वि. वि. के भौतिक विज्ञान विभाग में “मॉलिकुलर इलेक्ट्रॉनिक स्पेक्ट्रा ऑफ डायटॉमिक मॉलिक्युल्स” विषय पर आयोजित व्याख्यान में भाभा परमाणु केंद्र, मुंबई के हाल में सेवानिवृत्त वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. माधव सक्सेना ने कहा कि इन अध्ययनों से अणुओं के विभिन्न ऊर्जा स्तरों की समस्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है जो अन्य किसी तरह से संभव नहीं है.

डॉ. माधव सक्सेना ने कहा कि वैसे तो यह विज्ञान की प्राचीन शाखा है फिर भी नये-नये शोध हो रहे हैं. इससे अणु के पूरे चरित्र को अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है. यह ज्ञान अन्य विषयों के शोध में भी काफी मदद करता है. व्याख्यान से पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. हरि प्रकाश ने बताया कि डॉ. सक्सेना ४० वर्ष तक भाभा केंद्र में कार्यरत रहे. उन्होंने डॉ. सक्सेना के अनुसंधान कार्य के बारे में भी बताया. कुछ अणुओं में प्राप्त लेसर-संक्रमणों के उपयोग से नये लेसर बनाये जा सकेंगे. विभाग के वरिष्ठ प्रो. प्रदीप कुमार ने धन्यवाद ज्ञापन किया. इस अवसर पर विभाग के अध्यापक तथा विद्यार्थी भारी संख्या में मौजूद थे. (अमर उजाला)

गोष्ठी में साहित्यकार सम्मानित

फर्रुखाबाद, २५ दिसंबर : साहित्यिक संस्था “शिखर” के तत्वावधान में मंगलवार को आवास-विकास कॉलोनी स्थित डॉ. श्याम निर्मोही के निवास पर एक काव्य गोष्ठी आयोजित की गयी. मुंबई से आये “कथाबिंब” पत्रिका के संपादक डॉ. माधव सक्सेना “अरविंद” को सम्मानित भी किया गया.

गोष्ठी का शुभारंभ मुख्य अतिथि डॉ. माधव सक्सेना ने मां सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण कर किया. राजेंद्र त्रिपाठी “सरोज” ने मां वाणी की वंदना की. शिखर संस्था के समन्वयक ओमप्रकाश अग्रवाल ने अरविंद और उनकी पत्नी मंजुश्री का सम्मान किया. गोष्ठी का प्रारंभ करते हुए डॉ. श्याम ने कहा कि सारे संसार को जीतने के लिए ईसा को घर से निकलना पड़ा और मोम बनकर पिघलना पड़ा. उन्होंने - *मंगल प्रभात आया ले रश्मियां निराली, शुभकामना ग्रहण कर नववर्ष तू आली* - पंक्तियां प्रस्तुत कीं. प्राचार्या डॉ. आशा श्रीवास्तव ने *मैं स्वाती नक्षत्र की प्यासी हूं, गंगाजल न भाये* रचना प्रस्तुत की. कन्हैयालाल शर्मा ने *ओम जबसे क्रैद है कुछ महकदों में, जे. पी. टंडन अलौकिक ने कोई नहीं सुनेगा यहां अलौकिक*, रामदुलारे पाठक ने *जल रहा है धू-धू शिखर केसर सदन* पंक्तियां प्रस्तुत कीं. मुख्य अतिथि ने फतेहगढ़

की पृष्ठभूमि पर लिखी अपनी बहुचर्चित कहानी *हिंदुस्तान-पाकिस्तान* पढ़कर सुनायी. उन्होंने समय के अनुरूप कहानी लेखन पर बल दिया. इस मौके पर रामप्रकाश, सोबरन सिंह, सुनील गुप्ता, सुधा सिंह, सपनेश पटेल, शिव पटेल, सुनीता गुप्ता एवं सुल्तान सिंह मौजूद रहे. (अमर उजाला)

साहित्य को खेमों में बांटना अच्छी बात नहीं : डॉ. अरविंद

छिबरामऊ, २६ दिसंबर : साहित्य को जातिवाद के खेमों में बांटना अच्छी बात नहीं है. अच्छे साहित्य के पाठकों का कभी टोटा नहीं रहा - यह बात डॉ. माधव सक्सेना “अरविंद” ने “राष्ट्रीय सहारा” से हुई बातचीत में कही.

मुंबई से प्रकाशित “कथाबिंब” के संपादक माधव सक्सेना “अरविंद” का जन्म १७ मार्च १९४६ को फतेहगढ़ में हुआ था. बचपन से ही होनहार “अरविंद” को परिस्थितिवश १९६० में मुंबई जाना पड़ा. आप ४० वर्षों तक भाभा परमाणु केंद्र में वैज्ञानिक रहे. हिंदी साहित्य का लगाव कभी भी अलग नहीं हो सका.

आप १९७९ से “कथाबिंब” का सफलता पूर्वक संपादन कर रहे हैं. इससे पूर्व आपने “वैज्ञानिक” पत्रिका का भी संपादन किया. वैज्ञानिक और संपादक की भूमिका निभाने वाले “अरविंद” का कहना है कि साहित्य को खेमों और जातियों में बांटना साहित्य के लिए शुभ संकेत नहीं है. “डॉ. अरविंद” कुछ हद तक कहानी आंदोलनों को खोखला मानते हैं. उन्होंने कहा कि चाहे अ-कहानी आंदोलन हो, प्रगतिशील कहानी आंदोलन हो या फिर सचेतन - इनके चलाने के पीछे खुद को हाशिये से उठा कर मुख्यधारा में लाने की कोशिश रही है.

प्रतीक्षाग्रस्त, सुरंग, हिंदुस्तान-पाकिस्तान, अपाहिज, मेरे हिस्से का आसमान, आदमी मरता क्यों नहीं, मेरा भारत महान आदि कहानियों से चर्चा में आये “अरविंद” की पहली कहानी १९६७ में सारिका में छपी थी. तबसे उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा. वैज्ञानिक, लेखक, संपादक की अपनी भूमिका पर टिप्पणी करते हुए कहा कि तीनों काम सृजन से जुड़े हैं. अतः मैं तीनों का कार्य निर्वाह कर रहा हूं. प्रकाशकों के प्रति नाराजगी जताते हुए उन्होंने कहा कि लेखकों से पैसे लेकर पुस्तकें छाप कर प्रकाशक खुद तो कमाई कर लेते हैं, लेखक खाली हाथ रह जाता है.

तालग्राम स्थित सिटी चिल्ड्रेन अकादमी में सामाजिक क्रांति परिषद द्वारा आयोजित, सम्मान समारोह में युवा कथाकार अखिलेश कुमार के कविता संग्रह “कनाट प्लेस पर बीड़ी पीती दिल्ली” का डॉ. अरविंद ने विमोचन किया. इससे पूर्व परिषद की ओर से डॉ. अरविंद व जितेंद्र जौहर को शाल, सम्मान-पत्र व प्रतीक चिह्न भेंटकर महादेवी वर्मा सम्मान से सम्मानित किया. (सहारा)